विज्ञान

पर्यावरण संरक्षक राजीव गाँधी स्मृति अंक
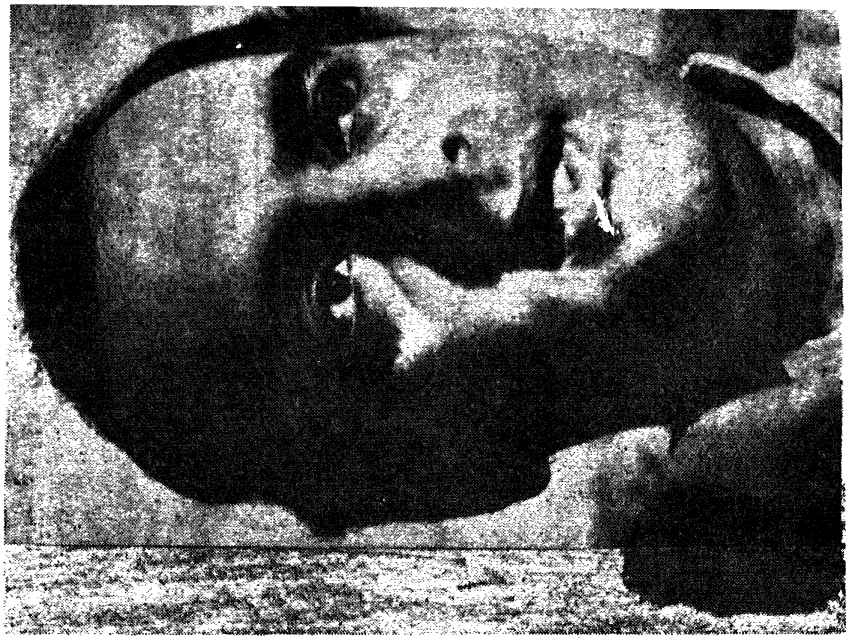
ार्षिक मूल्य : 25 रुपये   प्रति अंक : 2·50 पैसे

विज्ञान परिषद, प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 1913; विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
जून 1991; वर्ष 77 अंक 3

मूल्य
आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत; 500 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 50 रु०
वार्षिक : 25 रु०
एक प्रति : 2 रु० 50 पैसे

विज्ञान विस्तार

प्रकाशक
डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी
प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग

सम्पादक
प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

मुद्रक
अरुण राय
प्रसाद मुद्रणालय
7ए, बेली एवेन्यू
इलाहाबाद-211002

सम्पर्क
विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद-211002

राजीव गाँधी नहीं रहे

○प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव○

पिछले महीने मैंने लिखा था 'चुनावों के कारण देश का माहौल गर्म है', किन्तु उस समय मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि वर्तमान चुनावी माहौल में हमें देश के श्रेष्ठतम् सपूतों में से एक को खोना पड़ेगा। 21 मई को रात दस बजकर दस मिनट पर एक बम विस्फोट में पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गाँधी अकाल ही काल के गाल में समा गए।

यह बम विस्फोट मद्रास से 50 किलोमीटर दूर श्रीपेरूम्बुदूर नामक स्थान पर उस समय हुआ जब राजीव गाँधी अपनी स्वर्गीया माता श्रीमती इंदिरा गाँधी की मूर्ति पर माल्यार्पण करने के बाद उपस्थित जनसमूह का अभिवादन स्वीकार कर रहे थे। गाँधी का चेहरा इस शक्तिशाली बम विस्फोट में क्षत विक्षत हो गया था। उनकी अकाल मृत्यु की खबर से भारत सहित सारा विश्व स्तब्ध रह गया।

मुम्बई में 20 अगस्त सन् 1944 में जन्में राजीव का बचपन एक डेनिश आया अन्ना आर्नशाल्ट की देख रेख में बीता क्योंकि यह समय द्वितीय विश्व युद्ध और भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन—अँग्रेजों भारत छोड़ो आन्दोलन का था। इस समय उनके नाना पं० जवाहरलाल नेहरू जेल में थे।

राजीव श्रीमती इंदिरा गाँधी और श्री फीरोज गाँधी के बड़े पुत्र थे। उन्होंने 16 वर्ष की उम्र में अपने पिता और 20 वर्ष की उम्र में अपने नाना, भारत के प्रथम प्रधानमंत्री, पं० नेहरू को खो दिया।

भारत के दून स्कूल में प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात् उन्होंने लंदन के इम्पीरियल कॉलेज में प्रवेश लेकर ट्रिनिटी कॉलेज में मैकेनिकल इंजीनियरी का अध्ययन किया। इस दौरान उन्होंने खाली समय में पार्टटाइम नौकरी भी की। उनका रहन-सहन सादा था। सोनिया मैन्यो नामक एक खूबसूरत लड़की से उनकी मुलाकात कैम्ब्रिज में हुई और 1968 में सोनिया से उनका विवाह हो गया। अपने पिता फीरोज गाँधी से विरासत में पाई तकनीकी रुचि के कारण उन्होंने इंडियन एयर लाईंस में विमान चालक की नौकरी की।

वास्तविकता तो यह थी कि श्री राजीव गाँधी की राजनीति में रुचि नहीं थी। अपने छोटे भाई संजय गाँधी की 1980 में एक विमान दुर्घटना में अकाल मृत्यु हो जाने और श्रीमती इंदिरा गाँधी के एकाकी पड़ जाने के बाद अपनी माँ की सहायता के लिए उन्होंने राजनीति में प्रवेश किया और पहली बार 36 वर्ष की उम्र में अमेठी संसदीय क्षेत्र से लोक सभा के सदस्य निर्वाचित हुए।

1984 में श्रीमती इंदिरा गाँधी की अपने ही सिरफिरे सुरक्षाकर्मियों की गोलियों द्वारा हत्या के बाद उन्हें प्रधानमंत्री पद स्वीकार करना पड़ा और देश की बागडोर संभालनी पड़ी। राजीव गाँधी ने इस चुनौती को स्वीकार किया। उन्होंने एक साफ सुथरी "मिस्टर क्लीन" की छवि के साथ राजनीति में प्रवेश किया और अपने

कुशल नेतृत्व से जनमानस में एक नई आशा की ज्योति जगाई । उनका सपना था एक समृद्ध, शक्ति-सम्पन्न और तकनीकी दृष्टि से उन्नत भारत का इक्कीसवीं सदी में प्रवेश ।

उनके शासन काल में देश में कम्प्यूटर का जाल-सा बिछ गया । अंटार्कटिका की वैज्ञानिक यात्राओं को गति मिली । वे विज्ञान और तकनीकी के द्वारा अच्छी नस्ल की गाय-भैंसों से अधिक दुग्ध उत्पादन, संकर प्रजातियों द्वारा कृषि में क्रांति और ऊर्जा के नये विकल्पों की खोज के पक्षधर रहे । पर्यावरण के प्रति न केवल भारत में वरन् एशिया और विश्व में एक नई चेतना का संचार किया । गंगा सफाई अभियान की योजना को गति दी और इस प्रकार गंगा, जल की स्वच्छता की प्रतीक बन गई । गंगा प्रदूषणमुक्त हुई या नहीं, यह विवाद का विषय हो सकता है पर साफ पानी के उपयोग को लेकर जनसाधारण में चेतना अवश्य जगी ।

उन्हें प्रकृति और पशुपक्षियों से विशेष प्रेम था । एकाध बार छोटी अवधि की छुट्टियाँ उन्होंने राष्ट्रीय पार्कों में बिताई ।

एक अवसर पर तो उन्होंने कमर तक पानी में घुसकर एक ह्वेल के प्राणों की रक्षा की । 'चेर्नोबिल दुर्घटना' के बाद वे भारत के नाभिकीय संयंत्रों को लेकर चिन्तित थे और देश के शीर्षस्थ वैज्ञानिकों से इन संयंत्रों की सुरक्षा के उपायों के सम्बन्ध में घण्टों बातचीत करते थे । इन चर्चाओं में उनकी वैज्ञानिक सूझ-बूझ का भी पता चलता है । वे विज्ञान और तकनीकी का लाभ भारत की साधारण जनता तक पहुँचाना चाहते थे, साथ ही विज्ञान की प्रगति में लालफीताशाही के विरुद्ध थे ।

राजीव गाँधी के निधन से जहाँ विश्व का सबसे बड़ा भारतीय लोकतन्त्र लहूलुहान हुआ है, वहीं धर्म-निरपेक्षता, गुटनिरपेक्षता और विश्व शांति को गहरा धक्का लगा है । भारतीय विज्ञान तो दिशाहीन हो गया है।

ऐसा लगता है जैसे उनकी हत्या भारत को शक्तिहीन करने के किसी सुनियोजित षड़यन्त्र का हिस्सा हो। एशिया महाद्वीप में एक बड़ी शक्ति के रूप में उभर रहे भारत को कमजोर करने की साजिश । इतिहास साक्षी है कि जब-जब भारत की एकता और अखण्डता पर प्रहार हुआ है, एक नया भारत सामने आया है । इसके पूर्व भी जब श्रीमती गाँधी की हत्या हुई थी तब भारत की जनता एक हो गई थी । आज वैसा ही समय फिर आ गया है। एकता, अखण्डता, गुटनिरपेक्षता, धर्मनिरपेक्षता, लोकतन्त्र की रक्षा और विश्व शांति जैसे उत्कृष्ट जीवन मूल्यों को लेकर राजीव गाँधी आगे आये और इनकी रक्षा के लिए अपना जीवन होम कर दिया । भारत की जनता राजीव गाँधी के बलिदान को व्यर्थ नहीं जाने देगी ।

अलगाववादी और बिखरावबादी ताकतों को निश्चय ही एक बार फिर मुँह की खानी पड़ेगी ।

जिस साफ सुथरी "मिस्टर क्लीन" की छवि के साथ उन्होंने राजनीति में प्रवेश किया था उसी छवि के साथ संसार से विदा हो गये । उनकी अस्थियाँ गंगा में प्रवाहित कर दी गई हैं । एक कहावत है—"ईश्वर जिसे प्यार करता है, उसे अपने पास जल्दी बुला लेता है ।" राजीव गाँधी जिन जीवन मूल्यों को लेकर जिए उन्हीं के लिए मरे भी ।

आज राजीव गाँधी हमारे बीच नहीं हैं किन्तु विज्ञान और तकनीकी के साथ इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करने के उनके सपने को हमें साकार करना है । उनके प्रति यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी ।

इन शब्दों के साथ मैं राजीव गाँधी की स्मृति को प्रणाम करते हुए विज्ञान परिषद् परिवार की भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ । ● ●

इक्कीसवीं सदी का पेट कैसे भरेंगे ?

○डॉ० रमेश दत्त शर्मा○

45 वर्ष पूर्व सन् 1945 की 16 अक्तूबर को एफ ए ओ अर्थात् खाद्य और कृषि संगठन की स्थापना की गई थी और उसी दिन से भूख के विरुद्ध एक विश्व-युद्ध छेड़ा गया था। तब से 150 से अधिक देश एकजुट होकर धरती के माथे से भूख का कलंक मिटाने में लगे हुए हैं। एफ ए ओ इनको आर्थिक और तकनीकी सहायता दे रहा है। सन् 1981 से हर साल 16 अक्तूबर का दिन विश्व खाद्य दिवस के रूप में मनाया जाता है। इस बार इस दिन पूरी दुनिया में "भोजन : भविष्य के लिए" विषय पर विचार किया गया। प्रस्तुत है इस विषय पर "खेती" के प्रधान सम्पादक "डॉ० रमेश दत्त शर्मा के विचार। डॉ० शर्मा को इस वर्ष हिन्दी में सर्वश्रेष्ठ कृषि विज्ञान लेखन के लिए एफ ए ओ के 'विश्व खाद्य दिवस पुरस्कार' से सम्मानित किया गया है।"

—हरीश अग्रवाल

कृषि वैज्ञानिकों ने गिनती की है कि दुनिया भर में फूल वाले पौधों की लगभग साढ़े तीन लाख जातियों में से करीब 80 हजार ऐसी हैं, जिन्हें किसी न किसी रूप में खाया जा सकता है। लेकिन इनमें से अभी तक कुल 3 हजार पौधे ही खाने के काम आ रहे हैं। इन 3 हजार में से कोई सवा सौ पौधों की ही बाकायदा खेती की जा रही है। इनमें से भी केवल तीस फसलें हैं, जो हमारी आहार सम्बन्धी 95 प्रतिशत जरूरतें पूरी करती हैं। पैदावार के हिसाब से इनका क्रम इस प्रकार है : गेहूँ, चावल, मक्का, आलू, जौ, शकरकंद, टेपिओका (या कसावा), अंगूर, सोयाबीन, जई, ज्वार, गन्ना, बाजरा, केला, टमाटर, चुकन्दर, रई (धान्य), सन्तरा आदि साइट्रस फल, नारियल, बिनौले का तेल, सेब, आम, मूँगफली, सरसों-तोरिया, तरबूज, गोभी, प्याज, दालें, मटर और सूरजमुखी।

दस-बारह हजार साल से खेती में जुटी मानवजाति प्रकृति के इस खाद्य भंडार में मात्र एक नई फसल जोड़ पाई है—ट्रिटिकेल। यह ट्रिटिकम यानी गेहूँ और सिकेल यानी रई धान्य के बीच संकरण से पैदा किया गया है। अभी यह प्रोटीन-बहुल मानव-निर्मित अनाज जानवरों के खाने में ही काम आ रहा है और आदमी के खाने योग्य नहीं बन पाया।। अलग-अलग किस्म की फसलों में पराग और स्त्रीकेसर मिलाने की परम्परागत विधि से संकरण कराना मुश्किल था। अब इस कठिनाई को दूर करने के लिए अनेक तकनीकें खोजी गई हैं, जैसे कि 'कोशिका-संलयन'। इनमें किसी भी पौधे की किसी भी कोशिका को दूसरे पौधे की कोशिका से मिला दिया जाता है। इसी तरह एक पौधे के गुणसूत्र (क्रोमोसोम) दूसरे की कोशिका में सुई लगाकर डाले जा सकते हैं। कोशिका-संलयन के तरीके से अलूचा और आड़ू की कोशिकाओं को मिलाकर परखनली में पौध तैयार करके "नेक्टराइन" नाम से एक नया फल अमेरिकी सुपरबाजारों में बिकने लगा है। यह दोनों फलों का स्वाद देता है। इधर बायोटेक्नोलोजी की तकनीकें इतनी विकसित हो गई हैं कि किसी भी पौधे और प्राणी की आनुवंशिक सामग्री "डी एन ए" को दूसरे पौधे या प्राणी के

सम्पर्क सूत्र : श्री हरीश अग्रवाल, डी-40, गुलमुहर पार्क, नई दिल्ली-110049

डी एन ए में गडमड करके वैज्ञानिक नई सृष्टि रच सकते हैं। कुछ कानूनी अड़चनें और नैतिक प्रश्न उठाये गये हैं, नहीं तो अजीबोगरीब पेड़-पौधे और जीव-जन्तु हमारे इर्द-गिर्द घूम रहे होते।

हो सकता है कि 21वीं सदी तक ये प्रश्न और अड़चनें सुलझ जायें। एफ ए ओ के महानिदेशक डॉ० एडवर्ड सौमा के अनुसार एफ ए ओ संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू एन डी पी) की सहायता से फसलों की जैव प्रोद्योगिकी पर एक परियोजना शुरू कर रहा है। इसके अधीन इस अति विकसित क्षेत्र की तकनीकें सभी विकासशील देशों को उपलब्ध कराई जाएँगी और पौध-सामग्री का आदान-प्रदान सुलभ कराया जाएगा। एशिया और प्रशांत सागर क्षेत्र में यह सेवा विशेष रूप से प्रदान की जाएगी।

डॉ० सौमा के अनुसार "सन् 2025 तक दुनिया की आबादी साढ़े आठ अरब पहुँच सकती है। लेकिन अन्न उत्पादन के लिए आवश्यक प्राकृतिक साधन पूरी दुनिया में तेजी से नष्ट हो रहे हैं। मिट्टी का कटाव हर साल 250 लाख टन ऊपरी उपजाऊ मिट्टी को नष्ट कर रहा है। 80 लाख हेक्टेयर कृषि भूमि पूरी तरह बंजर हो चुकी है। हर साल 170 लाख हेक्टेयर जमीन में से जंगल घट रहे हैं।"

डॉ० सौमा का कहना है कि "विश्व में अनाज उत्पादन का हर साल 2.7 प्रतिशत की दर से बढ़ता हुआ, सन् 1950 के 70 करोड़ टन से बढ़कर सन् 1989 में 100 करोड़ 90 लाख टन तक जा पहुँचा। लेकिन आबादी भी तेजी से बढ़ी और इसीलिए जहाँ सन् 1980 के बाद के दशक के शुरू में 35 करोड़ लोग भूख के शिकार थे, वहीं दशक के अन्त तक इनकी संख्या 50 करोड़ से भी ऊपर जा पहुँची।"

इनमें से अधिकतर लोग विकासशील देशों में रहते हैं। हमारे देश में भी 40 प्रतिशत से ज्यादा लोग गरीबी की रेखा के नीचे रहकर जैसे-तैसे जीवन गुजार रहे हैं। गरीबी, बेरोजगारी, बीमारी और भूख के दुश्चक्र से करोड़ों लोगों को उबारना एक भारी चुनौती है। सुधरे बीज और उन्नत तरीके अपनाकर भारत इस सदी के अन्त तक अनुमानित एक सौ करोड़ आबादी का पेट बखूबी भर सकता है। इसके लिए अन्न उत्पादन की वर्तमान 17 करोड़ टन की उपलब्धि को 24 करोड़ टन तक ले जाना होगा। लेकिन केवल पेट भरना ही काफी नहीं है, संतुलित आहार उपलब्ध कराना आवश्यक है। इसके लिए जरूरी नहीं कि सबको सेब, अंगूर, काजू और बादाम खिलाने होंगे। सस्ते और सर्वसुलभ प्रोटीन-बहुल आहार भी अभी कुदरत के खजाने में बहुत से भरे हैं।

हमारे देश में "रामदाने" के लड्डू उपवास के दिनों में खाये जाते हैं। रामदाना प्रोटीन-बहुल अनाज है और इसी के साग वाली जाति "चोलाई", "खुरनी" या "काटाभाजी" के नाम से प्रचलित है। पहाड़ों पर पुराने जमाने से रामदाना जंगली रूप में उगता रहा है और कहीं-कहीं खेती भी होने लगी है। इसका वानस्पतिक नाम है अमरंथस। 'भारतीय वानस्पतिक सर्वेक्षण' संगठन के भूतपूर्व निदेशक डॉ० सुधांशु कुमार जैन ने बस्तर के आदिवासियों के बीच तीन साल रह कर ऐसे 88 पौधों का पता लगाया था, जिन्हें वे लोग भोजन के लिए इस्तेमाल करते हैं।

दक्षिण अमेरिका की एण्डीज पहाड़ियों में बसे आदिवासियों से "तार्वी" नामक नई तिलहनी फसल का पता चला है। तेल से भरे इसके दानों में 46 प्रतिशत प्रोटीन होता है। इस तरह पौष्टिकता में यह सोयाबीन को पीछे छोड़ देती है। पानी में भिगोकर "तार्वी" के दानों का कडुआपन मिटाया जा सकता है। लगभग हर तरह की मिट्टी में जम जाने वाली यह फसल सूखा और पाला दोनों को सह लेती है।

इसी तरह जंगल में ही खोजी गई 'विंग्ड बीन' (पंखिया फली या चौकोनी सेम) 'राष्ट्रीय वनस्पति आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो' द्वारा देश के पर्वतीय क्षेत्रों और अंडमान-निकोबार द्वीप समूहों में सफलतापूर्वक उगाई गई है।

'विग्ड बीन' के मटर जैसे दानों में 37 प्रतिशत प्रोटीन होता है। इसकी कंदिल जड़ें भी उबालकर खाई जा सकती हैं। इनमें आलू से दस गुना अधिक प्रोटीन होता है। "चोकोनी सेम" के नाम से लोकप्रिय हो रही है इस नई फसल की फली का हर हिस्सा खाने योग्य और स्वादिष्ट होता है। दानों से खाने का तेल भी निकलता है। इसकी पत्तियाँ भी पालक की तरह खाई जा सकती है और फूल पकाने पर खुम्भी का स्वाद देते हैं। साल भर में चार महीने तक फलियाँ उतरती हैं और हरी-हरी फलियों की सेम की तरह सब्जी बनाई जा सकती है।

दक्षिण अफ्रीका के कालाहारी मरुस्थल में उगने वाली जंगली फली "मराना" के दाने भी प्रोटीन में सोयाबीन और स्वाद में काजू और बादाम को मात करते हैं। इसकी कंदिल जड़ों को उबाल या भूनकर मीठी लजीज सब्जी बनती है। लेबनान और मैक्सिको में "बफैलो गोर्ड" या भैंसा कद्दू उगाया जाता है। इसके फलों की सब्जी और दानों का तेल खाने के काम आते हैं। 30-30 किलो वजन की कंदिल जड़ें भी खाई जा सकती हैं। हाँ खाने से पहले जड़ों को नमक के पानी में भिगोना होगा। भैंसा कद्दू का पौधा सदाबहार होता है और सूखी बंजर जमीनों को पसन्द करता है।

अमेरिका की 'राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी' ने दुनिया भर से खोजकर ऐसे 54 पौधों की सूची बनाई है, जिनकी खेती शुरू करने या खेती का विस्तार करने की संभावनाएँ हैं। अपने ही देश में कोई एक सौ जाति के ऐसे पौधे हैं जिनसे तेल प्राप्त किया जा सकता है, जबकि केवल दर्जन भर पौधे ही तिलहन के रूप में इस्तेमाल हो रहे हैं।

हाल में ही 'खाद्य और कृषि संगठन' द्वारा कराये गये अध्ययन से भी यही नतीजा निकला है कि बढ़ती आबादी का पेट दुनिया भविष्य में भी भर ही लेगी। लेकिन इसके लिए कदम-कदम पर विज्ञान का सहारा लेना होगा। विकसित देशों में तो शायद ऐसी गोलियाँ ही चल निकले, जिन्हें खाकर हर व्यंजन का स्वाद लिया जा सके, संतुलित आहार भी मिल जाय और चौका-चूल्हे का झंझट भी न करना पड़े। ● ●

[इस्वा फीचर्स से साभार]

पर्यावरणीय प्रदूषण का स्वास्थ्य पर प्रभाव तथा रोकथाम

○डॉ० डी० डी० ओझा एवं पी० सी० जैन○

पर्यावरण शब्द के अन्तर्गत मिट्टी, जल, वायु तथा आकाश मुख्य रूप से आते हैं। समस्त जीव जगत् की उत्पत्ति पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश तथा वायु इन पाँच तत्वों के संयोग से हुई है। इन सभी पाँच तत्वों की उपलब्धि हमें तभी सुगमतापूर्वक प्राप्त हो सकती है, जब प्रकृति की मौलिकता में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाय, अर्थात् पर्यावरण का सन्तुलन न बिगड़ने दिया जाय। मानव समाज द्वारा प्रकृति के साथ अनाचार करने का दुष्परिणाम पर्यावरण प्रदूषण के रूप में हमारे सामने है। तीव्र औद्योगिकीकरण के कारण प्राकृतिक संसाधनों की खपत तीव्रता से हो रही है। तमाम ऐसे साधन एवं तकनीकें जो मनुष्य की सुख सुविधाओं में वृद्धि करने के उद्देश्य से उपयोग में लायी जा रही

ओझा : ब्रह्मपुरी, हजारी चबूतरी, जोधपुर (राजस्थान)-243001
जैन : मुख्य अभियन्ता, भू-जल विभाग, जोधपुर (राजस्थान)

है, से प्रतिफल के रूप में तरह-तरह के प्रदूषण फैलते जा रहे हैं जिनमें वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, नाभिकीय प्रदूषण, मृदा एवं जल प्रदूषण प्रमुख है। विश्व की सड़कों पर दौड़ने वाले मोटर वाहनों की संख्या में निरन्तर वृद्धि, पेड़ों की अन्धाधुन्ध कटाई, कल-कारखानों के विस्तार के फलस्वरूप वायुमण्डल में सल्फर डाइऑक्साइड एवं कार्बन डाइ ऑक्साइड की मात्रा में बढ़ोत्तरी होती जा रही है। वायु, जल तथा ध्वनि प्रदूषण के दुष्परिणाम आज सभी महानगरों में देखने को मिल रहे हैं। नाभिकीय प्रदूषण, मानव द्वारा आणविक हथियारों को बनाने की होड़ का परिणाम है। प्रस्तुत लेख द्वारा पर्यावरण प्रदूषण के विभिन्न पहलुओं जैसे वायु, ध्वनि, मृदा, जल तथा नाभिकीय पर कुछ प्रकाश डाला जा रहा है।

1. वायु प्रदूषण

अनुसन्धान के आकड़ों के अनुसार प्रतिवर्ष हम लगभग साढ़े 46 करोड़ टन खनिज ईंधन का उपयोग करते हैं तथा 2 करोड़ 60 लाख टन विषैले पदार्थ हवा में उड़ा रहे हैं। एक टन पैट्रोल के उपयोग के लिए 9900 घन मीटर हवा की जरूरत होती है। इसी प्रकार एक टन तेल के लिए 10,300 घनमीटर, एक टन कोयले के लिए 11600 घनमीटर, एक टन गैस के लिए 15,500 घनमीटर तथा एक टन धातु खनिज के लिए लगभग 12 टन हवा की आवश्यकता होती है।

भारत में वायु प्रदूषण मोटर गाड़ियों विशेषतः डीजल चलित से निकलने वाली गैसों से अधिक होता है। सर्वेक्षण आंकड़ों के अनुसार महानगर बम्बई में 60 प्रतिशत तथा दिल्ली में 40 प्रतिशत होता है। शुद्ध पर्यावरण में आयतन के अनुसार 78 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.03 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड तथा 16 प्रतिशत ऑक्सीजन होती है। इन गैसों के अतिरिक्त ओजोन, हाइड्रोजन सल्फाइड, सल्फर डाइऑक्साइड और अक्रिय गैसें भी होती हैं। यदि इन गैसों में किसी भी गैस का अनुपात किसी भी प्रकार से विचलित होता है तो वातावरण प्रदूषित होने लगता है। विश्व मौसम वैज्ञानिकों के संगठन द्वारा प्रकाशित प्रतिवेदन में कहा गया है कि दुनिया में अव्यवस्थित औद्योगिकीकरण से कार्बन डाइऑक्साइड की बढ़ती मात्रा के कारण इस शताब्दी के अन्त तक विश्व की जलवायु में भारी परिवर्तन आ सकता है। पिछली शताब्दी में कार्बन डाइऑक्साइड का स्तर 270 से 295 प्रति दस लाख भाग था जो अब 337 भाग हो गया है। यदि CO_2 की मात्रा इसी तरह बढ़ती रही तो निश्चित रूप से अगले दशक में वातावरण का तापमान अब से काफी बढ़ जायेगा। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इस समय भारत में करीब 50 करोड़ लोग वायु प्रदूषण से प्रभावित हैं। इसके कारण उनके फेफड़ों में बीमारियाँ उत्पन्न हो जाने की सम्भावना बनी रहती है। पौधों पर सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड, हैलोजन यौगिक, अमोनिया, पारा तथा स्वचालित वाहनों के धुएँ से गम्भीर प्रभाव पड़ता है, जिसके कारण पौधों में पिगमेन्टेशन, क्लोरोसिस आदि क्रियाएँ हो जाती है।

2. मृदा प्रदूषण

मिट्टी या मृदा एक ऐसा महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है जिसमें पौधे उगते और बढ़ते हैं। मनुष्य की दो प्रमुख मूलभूत आवश्यकताएँ भोजन और वस्त्र की पूर्ति, धरती में उगने वाली फसलों से ही प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से होती है। मृदा प्रदूषण अनेक कारणों से होता है। जैसे रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक ठोस अपशिष्ट, घरेलू कूड़ा-करकट तथा कारखानों से उच्छिष्ट आदि कुछ ऐसी वस्तुएं हैं जो मृदा को प्रदूषित करती हैं। किसान भाई कीटनाशक और कृमिनाशक रसायनों का छिड़काव फसलों से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए करते हैं, परन्तु इनकी निर्धारित मात्रा से अधिक उपयोग मृदा की उत्पादकता को कुप्रभावित करता है। इस कारण पोषक तत्वों का

ह्रास हो जाने से मृदा अनुर्वर होकर कृषि के लिए सर्वथा अनुपयुक्त हो जाती है। विषैले कीटनाशक भूमि के अन्दर प्रविष्ट होकर भूमिगत जल को भी प्रदूषित कर देते हैं। ठोस अपशिष्ट पदार्थ और घरेलू कूड़ा-करकट भी मृदा-प्रदूषण का एक महत्वपूर्ण कारक है। शहरों में ऐसे पदार्थों का उत्सर्जन कृषि योग्य भूमि पर करने से मृदा प्रदूषित हो जाती है। इन अपशिष्ट पदार्थों से भारी धातुओं और विषैले रसायनों की मात्रा में वृद्धि भी होती रहती है, जिसके कारण मिट्टी की उर्वराशक्ति कमजोर हो जाती है। कई जगह कृषि योग्य मिट्टियाँ क्षारीय हो जाती हैं जिनसे उत्पादन प्राप्त करना दुष्कर हो जाता हैं।

3. जल प्रदूषण

अत्यधिक रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग एवं अन्य विषैले रसायनों का जल में मिश्रण हो जाने के कारण भूमि के साथ-साथ जल स्रोत भी प्रदूषित हो रहे हैं, यद्यपि पीने के पानी में 100 पी पी एम से अधिक नाइट्रेट नहीं होना चाहिए, किन्तु इन उर्वरकों के प्रयोग से पानी में नाइट्रेट की मात्रा बढ़ जाने से कहीं-कहीं पर कैन्सर जैसी गम्भीर बीमारियों की सम्भावना देखने को मिली है। पानी में लोहा, मैंगनीज, क्लोराइड, फ्लोराइड एवं अन्य लवणों जैसे बोरेट, सल्फेट एवं कार्बोनेट की अधिकता से मानव शरीर पर कुप्रभाव पड़ता है। अधिक फ्लोराइड की मात्रा होने से फ्लोरोसिस जैसी बीमारी हो जाती है।

गाँवों की अपेक्षा शहरों में जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है। शहरों में घरेलू एवं उद्योगों से प्रतिदिन लाखों किलो वाहित मल पदार्थ निकलता है और इसके निस्तारण का उचित प्रबन्ध न होने की वजह से मिट्टी एवं जल प्रदूषण की समस्या जन्म लेती है। अपशिष्ट पदार्थ पानी में घुलकर कोलायडी या निलम्बित विलयन बनाकर गंदापन पैदा करते हैं। प्रदूषित जल की जैव रासायनिक ऑक्सीजन माँग बढ़ जाती है, अनुपचारित वाहित मल-जल की बी० ओ० डी० 250-300 मिग्रा०/लीटर तक पहुँच जाती है। उद्योगों और कारखानों से उत्पन्न अपशिष्ट पदार्थों में केडमियम, क्रोमियम, लेड, निकल, पारा जैसी भारी धातुएँ, अनेक कैन्सरकारी यौगिक, फिनॉल तथा अनेक दुर्गन्धयुक्त कार्बनिक पदार्थ मौजूद रहते हैं। इनकी सान्द्रता एक निश्चित मात्रा से अधिक होने पर अनेक गम्भीर समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। प्रदूषित जल का सेवन करने से हमें अनेक रोग जैसे मोतीझरा, आंत्रशोथ, फ्लोरोसिस, कैन्सर यकृत एवं वृक्क के रोग हो जाते हैं। जल प्रदूषण का भयंकर नुकसान जब होता है, तो भू-जल-स्रोत भी प्रदूषित हो जाते हैं जिसके कारण जलभृत भी प्रदूषित हो जाता है तथा ऐसी स्थिति में उसको प्रदूषण मुक्त करना असम्भव हो जाता है। भू-जल प्रदूषण एक अनुत्क्रमणीय प्रक्रिया है। अतः हमें हर सम्भव प्रयास करना चाहिए, जिससे जलभृत प्रदूषित न हो सके। जिन स्थानों पर भू-जल को सीधे ही काम में (पीने हेतु) लाया जाता है, वैसी जगह जल प्रदूषण महामारी फैला देता है।

4. ध्वनि प्रदूषण

आजकल ध्वनि प्रदूषण भी समस्या होता जा रहा है। हम वायु एवं जल प्रदूषण के बारे में जागृत है, परन्तु ध्वनि प्रदूषण उपेक्षित रह जाता है। अनावश्यक, असुविधाजनक और निरर्थक आवाज ध्वनि प्रदूषण करती है। बढ़ती हुई जनसंख्या एवं आधुनिकीकरण ध्वनि प्रदूषण से मुख्य कारण बन जाते हैं। सर्वेक्षण बताते हैं कि पिछले दस वर्षों में आवागमन के साधनों, औद्योगिक संस्थानों एवं मनोरंजन के साधनों के अत्यधिक विकास के कारण मनुष्य को लाभ कम एवं हानि अधिक हुई है। ध्वनि की मात्रा का निर्धारण डेसिबल में किया जाता है। मनुष्य शून्य डेसिबल पर भी सुन सकता है। 80 डेसिबल के ऊपर ध्वनि अप्रिय लगती है। 30 से 140 पर दुखदायी हो

व्यथा गाथा मूक नदियों की

○डॉ० अजय श्रीवास्तव○

नदियाँ हमारे जीवन का आधार हैं। हमारे पर्यावरण का अभिन्न अंग एवम् असंख्य लोगों के श्रद्धा व आस्था का केन्द्र बनीं ये नदियाँ मानव सभ्यता के विकास की कहानी अपने में समेटे हुए हैं। विश्व की अनेक सभ्यताएँ नदियों के किनारे पली, बढ़ी व फलीं। दुर्भाग्यवश तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या' औद्योगिकीकरण एवं अनियोजित विकास के कारण विश्व की अनेक नदियों का स्वरूप वह नहीं रहा, जो अतीत में था। विकसित देशों द्वारा विकास व सभ्यता के नये मापदण्ड ने विकासशील व अर्ध विकसित देशों में ऐसी ललक पैदा कर दी जिससे प्रकृति प्रदत्त इस अनुपम उपहार को हम समस्त लोगों ने जैसे चाहा, उपयोग में लाये। घरेलू कूड़े-कचरे, उद्योगों के उत्सर्जित पदार्थ, मृत जीव-जन्तुओं की लाशों, रेडियोधर्मी कारकों व हानिकारक रासायनिक पदार्थों से छुटकारा पाने के लिए नदियों को सर्वाधिक उपयुक्त समझा गया। अनेक विषैले व जानलेवा अपशिष्ट, कीटनाशक पदार्थ व पेस्टिसाइड यथा डी० डी० टी० व आरगैनोक्लोरीन का नदियों के मिट्टियों में जमाव व फिर जैव भूरासायनिक चक्र के माध्यम से मानव व स्थलीय जीव-जन्तुओं के शरीर में प्रवेश कर अनेक रोगों को पैदा करने का कारण बना है। लगभग 80 प्रतिशत रोग प्रदूषित जल के पीने से ही होते हैं। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' के एक आकलन के अनुसार विकासशील राष्ट्रों में प्रति वर्ष तकरीबन ढाई करोड़ लोग अशुद्ध, गन्दे जल के उपयोग के कारण रोग-ग्रस्त होते हैं और काल के गाल में समा जाते हैं। प्रदूषित जल के उपयोग ने हमें अनेक बीमारियों का तोहफा दिया है, जिनमें हैजा, पीलिया, पोलियो, डायरिया, फ्लू, आँख की बीमारियाँ चमड़े व फेफडे का रोग (क्षय रोग) प्रमुख हैं। जल में मानक मान से बढ़ी घुलित आर्सेनिक कैंसर, कैडमियम किडनी-रोग, सिल्वर लीवर-रोग, फ्लुओराइड दाँतों की बीमारी (फ्लूओरोसिस) मैगनीज नपुंसकता, आयरन उल्टी व मरकरी दृष्टि-दोष, कुन्दता एवं श्रवण-शक्ति के ह्रास के लिए उत्तरदायी है।

उपलब्ध पेय जल इस कदर प्रदूषित हो चला है कि विश्व भर में लगभग डेढ़ करोड़ बच्चे 5 वर्ष की आयु पूरा करने के पूर्व ही कालकवलित हो जाते हैं, जिनमें से एक तिहाई की मृत्यु तो केवल अतिसार रोग से ही होती हैं। विश्व के निर्धन देशों में आधे से भी अधिक लोग शुद्ध पेय जल के लिए तरस रहे हैं। भारत में भी उपलब्ध जल का सत्तर प्रतिशत भाग अपेय है फिर भी हम इसे पीने के लिए विवश हैं। फलत: प्रत्येक वर्ष दस्त, पेचिश, पीलिया और टाइफाइड से करीब 15 लाख बच्चे मर जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1981 से 1990 तक 'अन्तर्राष्ट्रीय पेयजल व सफाई दशक' घोषित करने और 1990 तक सबको शुद्ध पेयजल उपलब्ध करने के निर्धारित लक्ष्य के बावजूद क्या हम शुद्ध पेय जल की समस्या के समाधान की दिशा में सफल हो सके हैं? आज भी देश में 2 लाख 27 हजार गाँव इस समस्या से बुरी तरह ग्रसित हैं। 'टेक्नोलाजी मिशन' के अथक प्रयास के बाद भी देश के विभिन्न हिस्सों खासकर ग्रामीण, पर्वतीय व दूर-दराज के क्षेत्रों में शुद्ध पेयजल की आपूर्ति की समस्या मुँह बाये खड़ी है।

विश्व की अनेक नदियों का जल विभिन्न उद्योगों व कल कारखानों के उच्छिष्ट व सीवर जल के कारण दुर्गन्धयुक्त एवं अस्वास्थ्यकर होता जा रहा है। इन नदियों में समाहित हानिकारक भारी धातुएँ, कार्बनडाइऑक्साइड, नाइट्रोजन, अमोनिया, हाइड्रोजनसल्फाइड गैस, कैल्सियम, सोडियम, सीसा व मैगनीज के लवण मनुष्य के शरीर

भू-विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

व्यथा गाथा मूक नदियों की

○डॉ० अजय श्रीवास्तव○

नदियाँ हमारे जीवन का आधार हैं। हमारे पर्यावरण का अभिन्न अंग एवम् असंख्य लोगों के श्रद्धा आस्था का केन्द्र बनीं ये नदियाँ मानव सभ्यता के विकास की कहानी अपने में समेटे हुए हैं। विश्व की अने सभ्ययाएँ नदियों के किनारे पली, बढ़ी व फलीं। दुर्भाग्यवश तीव्र गति ले बढ़ती जनसंख्या' औद्योगिकीकरण ए अनियोजित विकास के कारण विश्व की अनेक नदियों का स्वरूप वह नहीं रहा, जो अतीत में था। विकसित देश द्वारा विकास व सभ्यता के नये मापदण्ड ने विकासशील व अर्ध विकसित देशों में ऐसी ललक पैदा कर दी जिससे प्रकृ प्रदत्त इस अनुपम उपहार को हम समस्त लोगों ने जैसे चाहा, उपयोग में लाये। घरेलू कूड़े-कचरे, उद्योगों के उत्सर्जि पदार्थ, मृत जीव-जन्तुओं की लाशों, रेडियोधर्मी कारकों व हानिकारक रासायनिक पदार्थों से छुटकारा पाने के लि नदियों को सर्वाधिक उपयुक्त समझा गया। अनेक विषैले व जानलेवा अपशिष्ट, कीटनाशक पदार्थ व पेस्टिसाइड यथ डी० डी० टी० व आरगैनोक्लोरीन का नदियों के मिट्टियों में जमाव व फिर जैव भूरासायनिक चक्र के माध्यम से मानव व स्थलीय जीव-जन्तुओं के शरीर में प्रवेश कर अनेक रोगों को पैदा करने का कारण बना है। लगभग 80 प्रतिशत रोग प्रदूषित जल के पीने से ही होते हैं। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' के एक आकलन के अनुसार विकासशील राष्ट्रों में प्रति वर्ष तकरीबन ढाई करोड़ लोग अशुद्ध, गन्दे जल के उपयोग के कारण रोग-ग्रस्त होते हैं और काल के गाल में समा जाते हैं। प्रदूषित जल के उपयोग ने हमें अनेक बीमारियों का तोहफा दिया है, जिनमें हैजा, पीलिया, पोलियो, डायरिया, फ्लू, आँख की बीमारियाँ चमड़े व फेफड़े का रोग (क्षय रोग) प्रमुख हैं। जल में मानक मान से बढ़ी घुलित आर्सेनिक कैंसर, कैडमियम किडनी-रोग, सिल्वर लीवर-रोग, फ्लुओराइड दाँतों की बीमारी (फ्लूओरोसिस) मैगनीज नपुंसकता, आयरन उल्टी व मरकरी दृष्टि-दोष, कुन्दता एवं श्रवण-शक्ति के ह्रास के लिए उत्तरदायी है।

उपलब्ध पेय जल इस कदर प्रदूषित हो चला है कि विश्व भर में लगभग डेढ़ करोड़ बच्चे 5 वर्ष की आयु पूरा करने के पूर्व ही कालकवलित हो जाते हैं, जिनमें से एक तिहाई की मृत्यु तो केवल अतिसार रोग से ही होती हैं। विश्व के निर्धन देशों में आधे से भी अधिक लोग शुद्ध पेय जल के लिए तरस रहे हैं। भारत में भी उपलब्ध जल का सत्तर प्रतिशत भाग अपेय है फिर भी हम इसे पीने के लिए विवश हैं। फलतः प्रत्येक वर्ष दस्त, पेचिश, पीलिया और टाइफाइड से करीब 15 लाख बच्चे मर जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1981 से 1990 तक 'अन्तर्राष्ट्रीय पेयजल व सफाई दशक' घोषित करने और 1990 तक सबको शुद्ध पेयजल उपलब्ध करने के निर्धारित लक्ष्य के बावजूद क्या हम शुद्ध पेय जल की समस्या के समाधान की दिशा में सफल हो सके हैं? आज भी देश में 2 लाख 27 हजार गाँव इस समस्या से बुरी तरह ग्रसित है। 'टेक्नोलाजी मिशन' के अथक प्रयास के बाद भी देश के विभिन्न हिस्सों खासकर ग्रामीण, पर्वतीय व दूर-दराज के क्षेत्रों में शुद्ध पेयजल की आपूर्ति की समस्या मुँह बाये खड़ी है।

विश्व की अनेक नदियों का जल विभिन्न उद्योगों व कल कारखानों के उच्छिष्ट व सीवर जल के कारण दुर्गन्धयुक्त एवं अस्वास्थ्यकर होता जा रहा है। इन नदियों में समाहित हानिकारक भारी धातुएँ, कार्बनडाइऑक्साइड, नाइट्रोजन, अमोनिया, हाइड्रोजनसलफाइड गैस, कैल्सियम, सोडियम, सीसा व मैगनीज के लवण मनुष्य के शरीर,

---

भू-विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

व्यथा गाथा मूक नदियों की

○डॉ० अजय श्रीवास्तव○

नदियाँ हमारे जीवन का आधार हैं। हमारे पर्यावरण का अभिन्न अंग एवम् असंख्य लोगों के श्रद्धा व आस्था का केन्द्र बनीं ये नदियाँ मानव सभ्यता के विकास की कहानी अपने में समेटे हुए हैं। विश्व की अनेक सभ्ययाएँ नदियों के किनारे पली, बढ़ी व फलीं। दुर्भाग्यवश तीव्र गति ले बढ़ती जनसंख्या' औद्योगिकीकरण एवं अनियोजित विकास के कारण विश्व की अनेक नदियों का स्वरूप वह नहीं रहा, जो अतीत में था। विकसित देशों द्वारा विकास व सभ्यता के नये मापदण्ड ने विकासशील व अर्ध विकसित देशों में ऐसी ललक पैदा कर दी जिससे प्रकृति प्रदत्त इस अनुपम उपहार को हम समस्त लोगों ने जैसे चाहा, उपयोग में लाये। घरेलू कूड़े-कचरे, उद्योगों के उत्सर्जित पदार्थ, मृत जीव-जन्तुओं की लाशों, रेडियोधर्मी कारकों व हानिकारक रासायनिक पदार्थों से छुटकारा पाने के लिए नदियों को सर्वाधिक उपयुक्त समझा गया। अनेक विषैले व जानलेवा अपशिष्ट, कीटनाशक पदार्थ व पेस्टिसाइड यथा डी० डी० टी० व आरगैनोक्लोरीन का नदियों के मिट्टियों में जमाव व फिर जैव भूरासायनिक चक्र के माध्यम से मानव व स्थलीय जीव-जन्तुओं के शरीर में प्रवेश कर अनेक रोगों को पैदा करने का कारण बना है। लगभग 80 प्रतिशत रोग प्रदूषित जल के पीने से ही होते हैं। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' के एक आकलन के अनुसार विकासशील राष्ट्रों में प्रति वर्ष तकरीबन ढाई करोड़ लोग अशुद्ध, गन्दे जल के उपयोग के कारण रोग-ग्रस्त होते हैं और काल के गाल में समा जाते हैं। प्रदूषित जल के उपयोग ने हमें अनेक बीमारियों का तोहफा दिया है, जिनमें हैजा, पीलिया, पोलियो, डायरिया, फ्लू, आँख की बीमारियाँ चमड़े व फेफड़े का रोग (क्षय रोग) प्रमुख हैं। जल में मानक मान से बढ़ी घलित आर्सेनिक कैंसर, कैडमियम किडनी-रोग, सिल्वर लीवर-रोग, फ्लुओराइड दाँतों की बीमारी (फ्लूओरोसिस) मैगनीज नपुंसकता, आयरन उल्टी व मरकरी दृष्टि-दोष, कुन्दता एवं श्रवण-शक्ति के ह्रास के लिए उत्तरदायी है।

उपलब्ध पेय जल इस कदर प्रदूषित हो चला है कि विश्व भर में लगभग डेढ़ करोड़ बच्चे 5 वर्ष की आयु पूरा करने के पूर्व ही कालकवलित हो जाते हैं, जिनमें से एक तिहाई की मृत्यु तो केवल अतिसार रोग से ही होती हैं। विश्व के निर्धन देशों में आधे से भी अधिक लोग शुद्ध पेय जल के लिए तरस रहे हैं। भारत में भी उपलब्ध जल का सत्तर प्रतिशत भाग अपेय है फिर भी हम इसे पीने के लिए विवश हैं। फलतः प्रत्येक वर्ष दस्त, पेचिश, पीलिया और टाइफाइड से करीब 15 लाख बच्चे मर जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1981 से 1990 तक 'अन्तर्राष्ट्रीय पेयजल व सफाई दशक' घोषित करने और 1990 तक सबको शुद्ध पेयजल उपलब्ध करने के निर्धारित लक्ष्य के बावजूद क्या हम शुद्ध पेय जल की समस्या के समाधान की दिशा में सफल हो सके हैं? आज भी देश में 2 लाख 27 हजार गाँव इस समस्या से बुरी तरह ग्रसित है। 'टेक्नोलाजी मिशन' के अथक प्रयास के बाद भी देश के विभिन्न हिस्सों खासकर ग्रामीण, पर्वतीय व दूर-दराज के क्षेत्रों में शुद्ध पेयजल की आपूर्ति की समस्या मुँह बाये खड़ी है।

विश्व की अनेक नदियों का जल विभिन्न उद्योगों व कल कारखानों के उच्छिष्ट व सीवर जल के कारण दुर्गन्धयुक्त एवं अस्वास्थ्यकर होता जा रहा है। इन नदियों में समाहित हानिकारक भारी धातुएँ, कार्बनडाइऑक्साइड, नाइट्रोजन, अमोनिया, हाइड्रोजनसल्फाइड गैस, कैल्सियम, सोडियम, सीसा व मैगनीज के लवण मनुष्य के शरीर,

---

भू-विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

जलजीवों, वनस्पतियों और पशुओं में प्रवेश कर स्वास्थ्य को बहुत हानि पहुंचाते हैं। नदी जल प्रदूषण ने न जाने क्या-क्या कहर ढाये ? 1953 में जापान के क्यूशू द्वीप के पूर्व में मीनीमाता नगर में अवस्थित एवं विनाउल क्लोराइड एवं एसीटलडीहाइड्रेट नामक रसायनों का निर्माण करने वाली फैक्ट्री से अधिक मात्रा में पारे के उत्सर्जन के फलस्वरूप मीनीमाता खाड़ी की मछलियाँ विषाक्त हो गयीं। इन विषाक्त मछलियों को खाने से सैकड़ों लोगों की मृत्यु हो गई, व हजारों अपाहिज बन बैठे। पश्चिम यूरोप की राइन नदी का भी लगभग यही किस्सा है जहाँ स्विस रासायनिक कारखाने से पारे के अधिक मात्रा में उत्सर्जन से हजारों बड़ी-बड़ी मछलियाँ मर कर पानी पर उतरा गयी थीं।

अपने देश में भी नदियों की स्थिति अति सोचनीय है। नदी के तटवर्ती क्षेत्रों में उद्योगों के फलने-फूलने के साथ यहाँ की नदी-प्रणाली शनैः-शनैः प्रदूषित होती गयी। नदी जल प्रदूषण के संकट ने यहाँ की अनेक नदियों को सीवर में बदल दिया है। सन् 1969 में गंगा में कल-कारखानों का अपशिष्ट अधिक मात्रा में पहुँचने के कारण मुंगेर के पास पानी में ही आग लग गयी। 1968 में बड़ौदा की महिसागर नदी का स्वच्छ जल हरा हो गया। पूर्व के वर्षों में मोहनमीकिन्स द्वारा विषैले उत्प्रवाहित जलोत्सर्जन से गोमती नदी में मरी मछलियाँ उतरायी मिलीं। राष्ट्रीय पर्यावरण इंजीनियरिंग व अनुसन्धान संस्थान (नीरी) नागपुर के वैज्ञानिकों के अनुसार उत्तर में डलझील से दक्षिण में चालियार व पेरियार नदियों तक, पूरब में दामोदर से लेकर पश्चिम में थाना खाड़ी तक जल प्रदूषण की स्थिति अति चिन्तनीय है। आज भारत में 5,000 बड़ी व मध्यम स्तर की औद्योगिक इकाइयाँ, नदियों के जल को प्रदूषित करने पर आमादा हैं। भारत में नदियों के जल प्रदूषण में 90 प्रतिशत हिस्सा घरेलू कूड़े-कचरों का होता है, शेष औद्योगिक बहिःस्राव व अन्य माध्यमों का। फलतः बी० ओ० डी० व सी० ओ० डी० की मात्रा जल में जा रही है जिस कारण जलीय जन्तुओं एवं मानव स्वास्थ्य को खतरा उत्पन्न हो गया है। जल में घुली शुद्ध ऑक्सीजन की मानक मात्रा (4-6 मिलीग्राम प्रति लीटर) पर भी विपरीत प्रभाव पड़ा है। उदाहरण के लिए आसनसोल के निकट दामोदर नदी में बी० ओ० डी० एवं निक्षपित पदार्थ की मात्रा क्रमशः 270 मिलीग्राम प्रति लीटर एवं 1,00,000 मिलीग्राम प्रति लीटर है, जबकि होना चाहिये क्रमशः 3 मिलीग्राम प्रति लीटर व 100 मिलीग्राम प्रति लीटर से भी कम। इस नदी में दुर्गापुर कोयला धुलाई संयंत्र, आयरन एण्ड स्टील कम्पनी, बंगाल पेपर मिल्स के अवशिष्ट पदार्थ डाले जाते हैं। दुर्गापुर के निकट स्थित 8 बड़ी औद्योगिक इकाइयाँ लगभग डेढ़ लाख घनमीटर अवशिष्ट पदार्थ दामोदर नदी में प्रतिदिन डालती हैं।

सेन्टर ऑव साइंस एण्ड एन्वायरमेन्ट द्वारा प्रकाशित पुस्तक, 'द स्टेट ऑव इंडियाज एन्वायरमेन्ट' में भारत की सभी छोटी-बड़ी नदियों की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।

राजामुंदरी के समीप गोदावरी नदी में पेपर मिल से प्राप्त अवशेष एल्यूमीनियम हाइड्रॉक्साइड के कारण 2.4 किमी० का प्रक्षेत्र पूर्णतया दूषित हो गया है, फलतः नदी की तलहटी में रहने वाले जलीय जन्तुओं की संख्या तेजी से घटी है। यही स्थिति गोदावरी की सहायक नदी सोनी की है, जो कोठागुदेम थर्मल पावर स्टेशन से निःसृत गंदे पानी से निरन्तर दूषित होती जा रही है। कृष्णा की सहायक भाद्रा नदी, भद्रावती स्थित लुगदी, पेपर एवं स्टील के कारखानों से उत्सर्जित विषैले बहिःस्राव से प्रदूषित हो रही है। तमिलनाडु में कावेरी नदी दक्षिण की सर्वाधिक प्रदूषित नदी मानी जाने लगी है। भेल अपने अत्यन्त हानिकारक रासायनिक पदार्थों को इसमें डालता है। चर्म उद्योग व शराब के कारखाने, जहरीले पदार्थों को डालकर इसका जल अपेय बनाते जा रहे हैं। होशंगाबाद शहर

का गंदा पानी व सिवेज (जल-मल) ने नर्मदा नदी को इस कदर गंदा कर दिया है कि इस नदी में स्नान करने
शायद ही कोई व्यक्ति चर्मरोग से बचा हो ।

केरल की सबसे बड़ी व सर्वाधिक प्रदूषित नदी पेरियार के निचले किनारे पर खाद के कारखाने रायाय
धात्विक व रेयान यूनिटें अवस्थित हैं, जो अपने बहिः स्राव जैसे विभिन्न हानिकारक रासायनिक अवशेष अमो
फ्लोराइड्स व क्लोराइड्स इस नदी में डालते हैं । इण्डियन रेयॉन अर्थ लिमिटेड से निकला जहरीला मरकरी व
रेडियोसक्रिय पदार्थ इस नदी के जल को इतना प्रदूषित कर चुके हैं कि नदी में मछलियों का मरना अब आम
हो गयी है । चालियार नदी का निचला हिस्सा मावूँर में ग्वालियर रेयॉन फैक्ट्री से प्रदूषित है । 54.8 मिलियन
गंदे पानी, जिनमें कार्बनिक व अकार्बनिक पदार्थ की मात्रा अधिक होती है, इस नदी में डाल दिये जाते हैं ।
ऋतु में प्रदूषित पदार्थ की मात्रा अधिक होने से 5 किमी० तक की दूरी में नदी के जल में घुली ऑक्सीजन की
कुछ नहीं होती है । बम्बई के औद्योगिक उपनगर-अम्बरनाथ व उल्हासनगर से गुजरने वाली कालू नदी में भ
व मरकरी की मात्रा दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है । उड़ीसा की छोटी तटीय नदी रुसिकुल्ला में कॉस्टिक
बनाने वाली फैक्ट्री 'जयश्री केमिकल्स लिमिटेड' से निकलने वाले रासायनिक पदार्थ की मात्रा इस तरह से बढ़ ग
कि नदी की खैंसा मछलियाँ लुप्तप्राय हैं व पानी का सिंचाई कार्य में प्रयोग करने पर धान की खेती भी नष्ट
लगी है ।

इसके अतिरिक्त अन्य नदियों की स्थिति भी अति भयावह है । मध्यप्रदेश में इंदौर शहर का 35 मि.
लीटर औद्योगिक उच्छिष्ट व सिवेज का गंदा पानी प्रतिदिन खान नदी में मिलता है, जिसके कारण घुली ऑक्स
(डी० ओ०) की मात्रा शून्य है तो जैव रासायनिक ऑक्सीजन (बी० ओ० डी०) की मात्रा 250 मिलीग्राम प्रति
है । आज नदी के 3/4 हिस्से का जल अपेय है । गंगा नदी समूह भी निरन्तर प्रदूषित होती जा रही है । दिल
यमुना नदी का 48 किमी० का भाग प्रतिदिन 200 मिलियन लीटर गंदा पानी से दूषित होता जा रहा है, f
20 मिलियन लीटर औद्योगिक उच्छिष्ट एवं आधा मिलियन लीटर डी० डी० टी० की मात्रा होती है । राज
की सबसे बड़ी नदी एवं यमुना की सहायक चम्बल नदी सर्वाधिक प्रदूषित है । कोटा स्थित खाद का कार
परमाणु शक्ति केन्द्र व थर्मल पावर प्लांट अपने विषैले पदार्थ अमोनिया, पारा, लेड आदि इसी नदी में डाल
फलस्वरूप चम्बल का पानी अपेय हो गया है, जो अतीत में अनेक जानवरों की मृत्यु से स्पष्ट है । लखनऊ में ग
नदी का 35 किमी० का प्रक्षेत्र पूर्णतया दूषित है । इसे प्रदूषित करने में सीवेज का 180,000 क्यूबिक लीटर
जल एवं पेपर व लुगदी कारखाने से निकले अवशेष की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । डालमिया नगर के निकट
नदी का जल पेपर कारखाना, रासायनिक सिमेन्ट व चीनी मिल से निकले अवशेष से प्रदूषित है । छोटा नाग
पहाड़ियों से निकलकर बिहार के 540 किमी० लम्बे खनिज इलाकों की दूरी तय करने वाली दामोदर नदी की
कहानी भी कम दर्दनाक नहीं ! बोकारो व सिंदरी के मध्य स्थित रासायनिक व धात्विक कारखानों, बोकारो
कारखाना, सिंदरी खाद का कारखाना अपने सारे गंदे अवशेष इसी में प्रवाहित करते हैं । आसनसोल के चारों
फैले कोयले के 250 खानों से निःसृत उच्छिष्ट दामोदर नदी में डालते हैं । 'केन्द्रीय मत्स्य अनुसंधान संस्था
सर्वश्री ए० वी० नटराजन व बी० बी० घोष के अनुसार "नदी की पारिस्थितिकी तंत्र में विषमताएँ पै
रही हैं ।"

हिन्दू आस्था के अनुसार लोगों के पापों को धोकर स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त करने वाली गंगा मूक
कराह रही है । जल में घुले विषैले पदार्थों से छुटकारा पाने के लिए देश की सांस्कृतिक एकता की प्रतीक पतित

का गंदा पानी व सिवेज (जल-मल) ने नर्मदा नदी को इस कदर गंदा कर दिया है कि इस नदी में स्नान करने वाला शायद ही कोई व्यक्ति चर्मरोग से बचा हो।

केरल की सबसे बड़ी व सर्वाधिक प्रदूषित नदी पेरियार के निचले किनारे पर खाद के कारखाने रायायनिक धात्विक व रेयान यूनिटें अवस्थित हैं, जो अपने बहिः स्राव जैसे विभिन्न हानिकारक रासायनिक अवशेष अमोनिया, फ्लोराइड्स व क्लोराइड्स इस नदी में डालते हैं। इण्डियन रेयॉन अर्थ लिमिटेड से निकला जहरीला मरकरी व अन्य रेडियोसक्रिय पदार्थ इस नदी के जल को इतना प्रदूषित कर चुके हैं कि नदी में मछलियों का मरना अब आम बात हो गयी है। चालियार नदी का निचला हिस्सा मावूंर में ग्वालियर रेयॉन फैक्ट्री से प्रदूषित है। 54.8 मिलियन लीटर गंदे पानी, जिनमें कार्बनिक व अकार्बनिक पदार्थ की मात्रा अधिक होती है, इस नदी में डाल दिये जाते हैं। ग्रीष्म ऋतु में प्रदूषित पदार्थ की मात्रा अधिक होने से 5 किमी० तक की दूरी में नदी के जल में घुली ऑक्सीजन की मात्रा कुछ नहीं होती है। बम्बई के औद्योगिक उपनगर-अम्बरनाथ व उल्हासनगर से गुजरने वाली कालू नदी में भी लेड व मरकरी की मात्रा दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। उड़ीसा की छोटी तटीय नदी रुषिकुल्ला में कॉस्टिक सोडा बनाने वाली फैक्ट्री 'जयश्री केमिकल्स लिमिटेड' से निकलने वाले रासायनिक पदार्थ की मात्रा इस तरह से बढ़ गयी है कि नदी की खैंसा मछलियाँ लुप्तप्राय हैं व पानी का सिंचाई कार्य में प्रयोग करने पर धान की खेती भी नष्ट होने लगी है।

इसके अतिरिक्त अन्य नदियों की स्थिति भी अति भयावह है। मध्यप्रदेश में इंदौर शहर का 35 मिलियन लीटर औद्योगिक उच्छिष्ट व सिवेज का गंदा पानी प्रतिदिन खान नदी में मिलता है, जिसके कारण घुली ऑक्सीजन (डी० ओ०) की मात्रा शून्य है तो जैव रासायनिक ऑक्सीजन (बी० ओ० डी०) की मात्रा 250 मिलीग्राम प्रति लीटर है। आज नदी के 3/4 हिस्से का जल अपेय है। गंगा नदी समूह भी निरन्तर प्रदूषित होती आ रही है। दिल्ली में यमुना नदी का 48 किमी० का भाग प्रतिदिन 200 मिलियन लीटर गंदा पानी से दूषित होता जा रहा है, जिसमें 20 मिलियन लीटर औद्योगिक उच्छिष्ट एवं आधा मिलियन लीटर डी० डी० टी० की मात्रा होती है। राजस्थान की सबसे बड़ी नदी एवं यमुना की सहायक चम्बल नदी सर्वाधिक प्रदूषित है। कोटा स्थित खाद का कारखाना परमाणु शक्ति केन्द्र व थर्मल पावर प्लांट अपने विषैले पदार्थ अमोनिया, पारा, लेड आदि इसी नदी में डालते हैं फलस्वरूप चम्बल का पानी अपेय हो गया है, जो अतीत में अनेक जानवरों की मृत्यु से स्पष्ट है। लखनऊ में गोमती नदी का 35 किमी० का प्रक्षेत्र पूर्णतया दूषित है। इसे प्रदूषित करने में सीवेज का 180,000 क्यूबिक लीटर गन्दा जल एवं पेपर व लुगदी कारखाने से निकले अवशेष की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। डालमिया नगर के निकट सोन नदी का जल पेपर कारखाना, रासायनिक सिमेन्ट व चीनी मिल से निकले अवशेष से प्रदूषित है। छोटा नागपुर के पहाड़ियों से निकलकर बिहार के 540 किमी० लम्बे खनिज इलाकों की दूरी तय करने वाली दामोदर नदी की करुण कहानी भी कम दर्दनाक नहीं! बोकारो व सिंदरी के मध्य स्थित रासायनिक व धात्विक कारखानों, बोकारो स्टील कारखाना, सिंदरी खाद का कारखाना अपने सारे गंदे अवशेष इसी में प्रवाहित करते हैं। आसनसोल के चारों ओर फैले कोयले के 250 खानों से निःसृत उच्छिष्ट दामोदर नदी में डालते हैं। 'केन्द्रीय मत्स्य अनुसंधान संस्थान' के सर्वश्री ए० वी० नटराजन व बी० बी० घोष के अनुसार "नदी की पारिस्थितिकी तंत्र में विषमताएँ पैदा हो रही हैं।"

हिन्दू आस्था के अनुसार लोगों के पापों को धोकर स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त करने वाली गंगा मूक होकर कराह रही है। जल में घुले विषैले पदार्थों से छुटकारा पाने के लिए देश की सांस्कृतिक एकता की प्रतीक पतितपावनी

गंगा में 15 करोड़ की जनसंख्या अपने 17 हजार छोटे-बड़े नालों से कूड़ा-करकट व सीवेज का गंदा पानी तो डालती ही है, साथ ही साथ गंगा के किनारे बसे लगभग डेढ़ लाख उद्योग अपने हानिकारक रासायनिक बहि:स्राव भी डालते हैं। गोमुखी-गंगोत्री से निकलकर ऋषिकेश, हरिद्वार, कानपुर, वाराणसी, पटना व कलकत्ता एवं अन्य नगरों से होती हुई गंगा बंगाल की खाड़ी में मिलने के पूर्व डी० डी० टी० फैक्ट्री, चर्म उद्योग, लुगदी मिल, खाद के कारखाने, रबर उद्योग व विभिन्न रासायनिक कारखानों के अति विषैले उच्छिष्ट से निरन्तर प्रदूषित होती जा रही है। 48 प्रथम श्रेणी के व 66 द्वितीय श्रेणी के शहर अपने अनुपचारित सीवेज प्रतिदिन गंगा में डालते हैं। कलकत्ता व हावड़ा औद्योगिक नगरों से गुजरने वाली गंगा की सहायक नदी के रूप में एक धारा हुगली में पृथक होकर दामोदर नदी से मिलती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती है। हुगली में 150 बड़े कारखानों का कचड़ा, 8 चर्म उद्योग, 12 कपड़ा मिल, 87 जूट मिल व 4 शराब उद्योग का विषैला उच्छिष्ट हुगली में मिलता है। इसके कारण इन प्रक्षेत्रों में गंगा नदी आज सीवर में बदल गई है। वैज्ञानिक जाँच के परिणामत: गंगा जल में हैजा; अतिसार के विषाणु, आँव आमातिसार के सिस्ट, फफूँदी, पीलिया; गेस्ट्रो के विषाणु मिले हैं। तट पर शवदाह की क्रिया सम्पन्न होती है फलत: जल का तापक्रम 5-6° सेन्टीग्रेड तक बढ़ता है, जिसके कारण जल से 30-35 प्रतिशत ऑक्सीजन निकल जाती है, जो जल की जीवन-दायिनी शक्ति है। इस नदी का जल हावड़ा जिले में उलुबेरिया से डायमंड हारबर तक और इसके आगे के 24 परगना जिले के इलाकों में इतना अधिक प्रदूषित है कि किनारे के आस-पास के लोग इसे सिंचाई के लिए भी प्रयोग में नहीं लाते हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार शहरों व ग्रामीण परिक्षेत्रों की 41.9 लाख किलोमीटर गंदगी प्रतिदिन गंगा बेसिन में डाली जाती है। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (पूर्व में केन्द्रीय जल प्रदूषण नियंत्रण व निवारण बोर्ड) के एक रिपोर्ट के अनुसार गंगा नदी तट पर स्थित कारखानों से 11 लाख 75 हजार टन रासायनिक अवशेष समेत कई तरह की औद्योगिक छीजन 1965900 किलोग्राम प्रदूषणकारी अन्य पदार्थ प्रतिदिन गंगा में डाले जाते हैं। इसके साथ 11 लाख 50 हजार टन रासायनिक खाद एवं 2573 टन जीवनाशी (पेस्टिसाइड) के अवशेष भी जल को प्रभावित करते हैं। 300 टन लाशों की राख, 1500 टन अधजले शव तथा अनगनित मनुष्यों व पशुओं के शव गंगा में बहाये जाते हैं। यदि गंगा तट के किनारे बसे 1 लाख से भी अधिक आबादी वाले "ए" श्रेणी के 27 नगरों का गंदा जल उपचारित कर गंगा में डाला जाये तो 84 प्रतिशत प्रदूषण रुक जायेगा। लेकिन स्थिति में कोई परिवर्तन न हुआ तो जल में घुलित कैल्सियम, सोडियम, पोटैशियम, क्लोरीन, रेडॉन, आयोडीन व बैक्टेरियोफाज की मात्रा, जिनमें जल की विषाणुओं एवं जहरीले रासायनिक पदार्थों के प्रभाव को नष्ट करने की अभूतपूर्व क्षमता रहती है, नगण्य रह जावेगी और गंगा की पवित्रता का मिथक टूट जायेगा। गंगा की महत्ता को दृष्टिगत रखते हुए भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्री राजीव गाँधी ने स्वअध्यक्षता में 16 फरवरी, 1985 को 'केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण' की स्थापना की। इस प्राधिकरण की योजना—'गंगा कार्य योजना' (गंगा एक्शन प्लान) के अन्तर्गत गंगा जल के शुद्धिकरण हेतु अनेक कदम उठाये गये हैं, यथा नदी के जल में गिरने के पूर्व मल-जल के परिशोधन हेतु संयंत्रों की स्थापना व सीवेज को दूसरी दिशा में मोड़कर खेतों में पहुँचाने का कार्य ताकि गंगा में गंदा मल-जल न मिलकर पाइप लाइनों के द्वारा शोधन संयंत्रों तक पहुँच सके और ठोस अपशिष्ट को खाद के रूप में प्रयोग में लाया जा सके। 2525 किमी० लम्बी इस नदी के शुद्धिकरण की महती योजना के इस सदी के अन्त तक पूरा होने की आशा है तथा कोई ढाई अरब रुपये खर्च होने का अनुमान है। इस महत्वाकांक्षी योजना को मूर्त रूप देने के लिए ब्रिटेन, फ्रांस व हालैण्ड के साथ विश्व बैंक से सहयोग ली जा रही है।

वस्तुत: आज नदियों का जल प्रदूषण पूरे दुनिया में चिन्ता का विषय बन गया है। विभिन्न देशों की सरकारों ने नदियों के जल को पीने योग्य बनाने के लिए काफी प्रयास किये हैं, जैसे ब्रिटेन की सरकार ने थेम्स नदी

की सफाई के लिए व फ्रांसीसी सरकार ने सोन नदी की शुद्धिकरण के लिए। आज की भौतिकवादी व भोग-विलास की संस्कृति ने देश-दुनिया की कमाधिक समस्त नदियों को प्रदूषित कर रखा है। भारत सरकार के स्वच्छ जल देने के वायदे एवं प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951) से आज तक कोई 850 करोड़ रुपये खर्च करने के बाद भी लाखों गाँव स्वच्छ जल के लिए तरस कर रह रहे हैं। यह तो सर्वविदित ही है कि पर्वतीय परिक्षेत्रों की महिलाओं को पानी के लिए कितनी दूर तक का सफर तय करना पड़ता है, जो समय और श्रम की बर्बादी नहीं तो और क्या है ? हमारे ही देश में नहीं अपितु पूरी दुनिया में शुद्ध पेय जल का नितान्त अभाव है। यदि सम्पूर्ण सागरीय जल को आधे गैलन से निरूपित करें तो शुद्ध जल की मात्रा केवल आधी चम्मच होगी, जिसमें एक बूंद की मात्रा पृथ्वी के ऊपर बहते हुए जल को इंगित करेगी तो बाकी भौम (भूमिगत) जल को।

नदी जल प्रदूषण नियंत्रण कार्यक्रमों के सम्बन्ध में जन-जागृति फैलाने के लिए संचार माध्यमों एवं स्कूली कक्षाओं में नदियों के जल स्वच्छ रखने के तौर-तरीकों पर विशेष पाठ्यक्रमों का आयोजन उपयोगी सिद्ध हो सकता है। यदि हम मानव समाज का चरम लक्ष्य भौतिक समृद्धि प्राप्त करना ही बना रहा तथा नदियों के प्रति सामाजिक एवं वैज्ञानिक जागरूकता निरन्तर न बनी रही तो निश्चित तौर पर नदियों के विनाश की प्रक्रिया हम सभी को ऐसी अँधेरी घाटी में ढकेल देगी जहाँ होगा मात्र मानव विनाश। ● ●

कविता

विश्व पर्यावरण दिवस 5 जून पर उद्विग्नता

○ इरफान ह्यूमन ○

वह,
किसी से कुछ नहीं लेता
क्योंकि वह
दूसरों को जीवन देने के लिए
वचनबद्ध है।
वह,
किसी से कुछ नहीं कहता
बस
अविचल खड़ा रहता है

निदेशक, जन विज्ञान मिशन, 67-अंटा, शाहजहाँपुर-242001

और,
आदमी की मार सहता है।
अन्त में
एक मूक कष्ट के साथ गिरकर
दम तोड़ देता है।
वह किसी से कुछ नहीं लेता।
वह तो
अपने मृत शरीर को भी
दूसरों की सेवा में समर्पित
कर देता है।
लेकिन,
ऐसे समर्पण को मैं
उस पर हुआ अत्याचार कहूँगी
और यह अत्याचार
मुझ पर भी होगा
क्योंकि,
मैं उसकी अर्धांगिनी जो हूँ।
मैं भी तो
किसी से कुछ नहीं लेती।
और,
जब कोई थक जाता है
तो उसे अपनी गोद में ही
जगह देती हूँ।
आज
मैं बहुत उद्विग्न हूँ,
अपने सुहाग को लेकर नहीं,
मानव के
अस्तित्व को लेंकर।

● ●

भूमि प्रदूषण

○ दिनेश मणि ○

पृथ्वी के धरातल का 1/4 भाग भूमि है, परन्तु वर्तमान में इसका लगभग आधा भाग ध्रुवी क्षेत्रों, मरुस्थलों तथा पर्वतों के रूप में होने से मनुष्य के आवास योग्य नहीं है। इस समय पृथ्वी का केवल 280 लाख वर्गमील क्षेत्र ही आवास तथा खेती योग्य है। एक अनुमान के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के भरण-पोषण के लिए 2½ एकड़ भूमि से उत्पादित उत्पादों की आवश्यकता होती है। तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या तथा प्रति व्यक्ति द्वारा उपभोग में लायी जाने वाली भौतिक सामग्री की आवश्यकता में वृद्धि को देखते हुए यह उपलब्ध भूमि अल्प नहीं तो बहुत अधिक भी नहीं कही जा सकती। स्मरण रहे कि संसार में जनसंख्या वितरण असमान है। उदाहरणार्थ—अमेरिका में प्रति व्यक्ति 12½ एकड़ भूमि का औसत है तो फ्रांस में 3½ एकड़ तथा ब्रिटेन में एक एकड़ प्रति व्यक्ति का औसत है।

स्पष्ट है कि पृथ्वी पर उपयोग हेतु भूमि सीमित ही है अतः इसके प्रति हमारा व्यवहार विवेकपूर्ण होना चाहिये। दुर्भाग्य से मनुष्य ने इसे हमेशा अजीवित माना है तथा भोजन और आवास की आवश्यकता के पूर्ति के साधन के रूप में देखा है। मनुष्य ने हमेशा इस तथ्य की उपेक्षा की है कि पृथ्वी भी एक जीवित इकाई है तथा इसके प्राकृतिक साधनों की क्षमता सीमित है। फलस्वरूप आज भूमि भी प्रदूषण की गिरफ्त में आ चुकी है। भूमि-प्रदूषण को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जाता है—

"भूमि के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में ऐसा कोई भी अवांछित परिवर्तन जिसका प्रभाव मनुष्य तथा अन्य जीवों पर पड़े या जिससे भूमि की प्राकृतिक गुणवत्ता तथा उपयोगिता नष्ट हो, भूमि-प्रदूषण कहलाता है।"

भूमि प्रदूषण के लिए उत्तरदायी कारक निम्न हैं—

(1) अपशिष्ट द्वारा भूमि प्रदूषण

अपशिष्ट घरेलू, औद्योगिक, कृषीय किसी भी तरह के हो सकते हैं। ये अपशिष्ट अन्ततः भूमि को ही प्रदूषित करते हैं। अमेरिकी स्वास्थ्य सेवा के एक प्रवक्ता के अनुसार अमेरिका में प्रतिवर्ष 1½ अरब टन जन्तु अपशिष्ट, 1 अरब टन खनिज अपशिष्ट, 550,000,000 टन कृषि अपशिष्ट, 250,000,000 टन घरेलू, व्यावसायिक तथा नगरपालिका और 110,000,000 टन औद्योगिक अपशिष्ट उत्पन्न करते हैं।

(2) भूमि का रासायनिक प्रदूषण

भूमि का प्रदूषण विभिन्न प्रकार के रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशक दवाओं के उपयोग से भी हो रहा है। विभिन्न उद्योगों द्वारा निस्तारित व्यर्थ पदार्थों में कई तरह के रसायन होते हैं जो भूमि के रासायनिक प्रदूषण का कारण बनते हैं।

शोध छात्र, शीलाधर मृदा-विज्ञान संस्थान, 5 लाजपत राय रोड, इलाहाबाद-211002

विभिन्न प्रकार के कीटनाशक, शाकनाशक तथा कवकनाशक फसल सुरक्षा के दृष्टिकोण से छिड़के जाते हैं किन्तु इनकी अधिकांश मात्रा भूमि में चली जाती है ।

(3) भू-क्षरण द्वारा भूमि प्रदूषण

भू-क्षरण द्वारा कृषि क्षेत्र की ऊपरी सतह की मिट्टी कुछ ही वर्षों में नष्ट हो जाती है जबकि इतनी गहराई की उपजाऊ मिट्टी के निर्माण में हजारों वर्ष लग जाते हैं । शिवालिक की पहाड़ियों में अधिक चराई के कारण प्रत्येक बरसात में 6 सेमी० ऊपरी मिट्टी गायब हो जाती है जबकि इतनी मिट्टी के बनने में प्रकृति को लगभग 2400 वर्ष लगे थे । सामान्यतया उचित पोषक तत्व व अनुकूल मौसम में एक सेमी० मिट्टी तैयार होने में 300 से 1000 वर्ष का समय लगता है । दक्षिण के काली मिट्टी वाले क्षेत्रों में प्रति वर्ष 40 से 100 टन प्रति हेक्टेयर मिट्टी की उपजाऊ सतह नष्ट हो रही है । 1972 में लगाये गये एक अनुमान के अनुसार हमारे देश में प्रतिवर्ष लगभग 600 करोड़ टन मिट्टी भू-क्षरण द्वारा नष्ट हुई थी । यह मिट्टी अपने साथ 53 लाख 70 हजार टन नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पौटेशियम जैसे मुख्य पोषक तत्वों को बहाकर ले गई थी । उस समय इसका कुल मूल्य लगभग 700 करोड़ रुपये था जबकि 1980 में यह हानि 1,000 करोड़ रुपये आँकी गई थी । आज यह हानि कहीं ज्यादा ही है ।

(4) वनों के कटान द्वारा भूमि प्रदूषण

वन और मिट्टी एक दूसरे से जुड़े हुए हैं । मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि के साथ-साथ वनों से भू-क्षरण को रोकने में भी काफी मदद मिलती है । कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार जहाँ-जहाँ जंगल काटे गये हैं उन उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रो में भूमि का कार्बनिक पदार्थ 20-60 प्रतिशत तक बिना कुछ किये ही खत्म हो जाता है । इसके अतिरिक्त वन विनाश द्वारा भूमि के नंगा होने के बाद जब मूसलाधार वर्षा अथवा ओला वृष्टि होती है तो मिट्टी की ऊपरी उपजाऊ सतह टूटकर ढीली होकर पानी के साथ बह जाती है ।

(5) सिंचाई जल द्वारा भूमि प्रदूषण

डा० एम० एस० स्वामीनाथन के अनुसार कई सिंचाई परियोजनाओं में सिंचाई प्रारम्भ होने के कुछ ही वर्षों में खार और पानी के जमाव जैसे दोष देखे गये जिससे किसानों को लाभ की अपेक्षा नुकसान ही अधिक हुआ ।

हमारे देश की लगभग 70 लाख हेक्टेयर कृषि भूमि खार के कारण अपनी उत्पादन क्षमता खो चुकी है और 60 लाख हेक्टेयर कृषि भूमि पानी के जमाव की शिकार हो गई है ।

कृषि सम्बन्धी राष्ट्रीय आयोग के अनुसार 1976 में पानी के जमाव वाले कुल 60 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में से 34 लाख हेक्टेयर में जिनमें प्रमुख क्षेत्र पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, पंजाब, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु और केरल आदि हैं । पानी के जमाव का मुख्य कारण समय-समय पर आने वाली बाढ़ है जबकि शेष 26 लाख हेक्टेयर में पानी के जमाव का कारण भूमिगत जलस्तर का ऊँचा होना है ।

सिंचाई जल में लवणों (यथा सोडियम के लवण) की उपस्थिति के कारण मिट्टी तथा पौधों पर उसका बुरा प्रभाव पड़ता है । साथ ही वाहित मल-जल को सिंचाई हेतु प्रयोग करने पर कैडमियम, क्रोमियम, लेड, जिंक आदि विषैली भारी धातुओं की मात्रा मिट्टी में पहुँचने से प्रदूषण की सम्भावना रहती है ।

रेमसन ने 1886 में लिखा, "फालबर्ग के प्रयोग मेरे सुझाव तथा देखरेख में किए गए थे, जिनके फल-स्वरूप सेकरिन को खोजा गया। इसका प्रकाशन भी मेरे तथा फालबर्ग के संयुक्त शोधपत्र द्वारा हुआ था। मुझे फालबर्ग द्वारा प्राप्त धनराशि का भाग नहीं चाहिए, परन्तु सेकरिन की खोज में मेरा भी हाथ रहा था।" रासयनिक उद्योग के क्षेत्र में विख्यात 'मर्क एण्ड कम्पनी' ने रेमसन को अपनी ओर से आश्वासन दिया कि यदि वे फालबर्ग के विरुद्ध मुकदमा दायर करें तो कम्पनी मुकदमें का सारा व्यय उठायेगी। परन्तु रेमसन ने 'पेटेंट' पर मुकदमा चलाने से साफ मना कर दिया।

उन्हीं दिनों अमेरिका में एक आंदोलन आरम्भ हुआ जो भोजन सामग्री में यौगिकों की मिलावट के विरुद्ध था। भोजन में अनेक यौगिक मिलाये जाते थे, और कुछ अभी भी मिलाये जाते हैं। यह प्रचारित किया जाता है कि मिलावट से भोजन का स्वाद अच्छा हो जाता है, या उसकी जीवन-अवधि बढ़ जाती अथवा उसकी पौष्टिकता में वृद्धि होती है। इनमें ऐसे भी अनेक यौगिक थे जो हानिकारक सिद्ध हुए। इस आंदोलन के दबाव में अमेरिका की तत्कालीन सरकार ने 1906 में फूड एण्ड ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन (Food And Drug Administration) की स्थापना की। उसके प्रथम निदेशक **हारवे वाइली** ने सेकरिन के विरुद्ध भी आवाज उठाई। कहा गया कि यह कोलतार का उत्पाद है और इसमें ऐसे तत्व हैं जो खाने के उपयुक्त नहीं हैं। इसलिए यह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध होगा। किन्तु सेकरिन के विरुद्ध यह आंदोलन सफल न हो सका। अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति (थियोडर रुजवेल्ट) 'मधुमेह' से पीड़ित होने के कारण नित्य सेकरिन का सेवन करते थे। उन्हें उससे कोई भी हानि नहीं जान पड़ी। उन्होंने सेकरिन के बहिष्कार की माँग यह कहकर रद्द कर दी कि जो सेकरिन को हानिकारक बताता है वह निस्सन्देह ही 'मूर्ख' है।

इसी प्रकार एक अन्य मधुरक की अचानक खोज भी कुछ कम रोचक नहीं है। इलिनायस विश्वविद्यालय में वैज्ञानिक **माइकेल स्वेदा** जीवाणुनाशक पदार्थों के निर्माण और खोज कार्यों में लगे हुए थे। यह 1937 के लगभग का काल था। वे पाइप द्वारा तम्बाकू पीने के आदी थे। साथ में तम्बाकू चबाने की भी आदत पड़ गई थी। एक दिन प्रयोगशाला में सिगरेट इसलिए पी रहे थे क्योंकि पाइप की अच्छी तम्बाकू उपलब्ध न थी। जलती सिगरेट को एक जगह रखकर वे किसी काम में व्यस्त हो गए। बाद में दुबारा सिगरेट पीने पर मिठास का आभास हुआ। अनायास ही उन्होंने पास रखे यौगिकोंको चखना आरम्भ कर दिया और पास रखे सोडियम साइक्लोहेक्साइल साइक्लेमेट में उन्हें अत्यधिक मिठास मालूम हुई। परीक्षणों से ज्ञात हुआ कि इस यौगिक की मिठास शर्करा से केवल 1.30 गुना ही अधिक थी। परन्तु इसकी मिठास शर्करा की मिठास के अधिक निकट थी और चखने के बाद सेकरिन की अपेक्षा कड़वाहट भी कम थी। बाद में इसे 'सुकरिल' नाम से बाजार में बेचा जाने लगा।

अब तो ऐसे अनेक यौगिक ज्ञात है जिनका स्वाद मीठा होता है। परन्तु इस गुण में कोई नियमबद्धता नहीं पाई गई है। उदाहरण के लिए सीसा और बैरिलियम आयनों का स्वाद मीठा होता है परन्तु ये विषैले पदार्थ हैं। ग्लिसरॉल आदि अनेक पोलिहाइड्रिक एल्कोहॉल भी मीठे होते हैं। शर्करा में केवल कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन के परमाणु विद्यमान होते हैं, परन्तु क्लोरीनयुक्त क्लोरोफार्म भी मीठा होता है। सेकरिन में कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन के अतिरिक्त नाइट्रोजन व सल्फर के परमाणु भी विद्यमान रहते हैं। सुकरिल के अणु में उपर्युक्त के अति-रिक्त सोडियम अथवा कैल्सियम भी विद्यमान रहता है। ● ●

विज्ञान वार्ता

○डॉ० अरुण आर्य○

1. मटर के बराबर मुर्गी के अण्डे

मुर्गी के अण्डे किसने नहीं देखे, मगर मटर के समान अण्डों को पढ़कर आप आश्चर्य कर रहे होंगे। होटलों, रस्टोरेन्ट्स एवं खाद्य-भण्डारों में इसके रखने एवं उपयोग करने में कई व्यवहारिक कठिनाइयाँ आती हैं। कहीं-कहीं पर अण्डों को फेटकर उन्हें जमा दिया जाता है, जहाँ इसके जमने में 36 से 38 घंटे लगते हैं, लेकिन इस बीच उसमें जीवाणुओं के आक्रमण द्वारा खराब होने की सम्भावना रहती है। उपयोग के समय यदि पात्र में रखे अण्डों से थोड़ी मात्रा निकालने की आवश्यकता हो तो पूरे पात्र के बचे हुए अण्डे बेकार हो जाते हैं।

इन्हीं सब आवश्यकताओं ने जन्म दिया ऐसे अण्डे विकसित करने को जिनका आकार छोटा हो, जिससे उन्हें सुविधापूर्वक रखा जा सके व एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जा सके।

क्रायोग्रेन (Cryogran) एक मान्यता प्राप्त विधि है, जिसमें द्रव एवं अर्ध ठोस वस्तुओं को जमाकर मटर के दानों के आकार में परिवर्तित कर दिया जाता है। ओन्टेरिओ, कनाडा के मिसीसाउगा नामक स्थान की आई क्यू एफ (I Q F) नामक कम्पनी ने क्रायोग्रेन उपकरणों की खोज की है, जिनकी मदद से अण्डों को मटर के दानों (Pelletized eggs) के रूप में परिवर्तित किया जाता है। इस विधि में द्रव नाइट्रोजन (Liquid Nitrogen) को बड़े-बड़े पात्रों में भेजा जाता है, वहाँ उसमें अण्डों को फेटकर उनको बूंदों के रूप में डाला जाता है, जहाँ पहुँचते ही ये दाने 5 सेकेण्ड में मटर के दानों (Pellets) में परिवर्तित हो जाते हैं। द्रव नाइट्रोजन को पात्रों से अलग कर लिया जाता है और अण्डों के दानों को इकट्ठा कर लियाजाता है।

'फ्रीज-ड्राइंग (Freeze-Drying) विधि के विपरीत जहाँ पर खाद्य वस्तुओं से पानी को बाहर निकाल कर उन्हें जमा दिया जाता है, क्रायोग्रेन विधि में पानी को भी वस्तु के साथ जमा देते हैं। इससे वस्तुओं के उपयोग में लाते समय बाहर से पानी मिलाने की आवश्यकता नहीं होती। उदाहरण के तौर पर यदि आमलेट बनाने के लिए आपको एक चाय के कप के बराबर अण्डे चाहिए तो एक कप के बराबर पेलेटाइज्ड अण्डे लीजिए, मिक्सर में डालिये; फेंटिये और आमलेट बनाइये।

आज जहाँ त्वरित खाद्य (Fast Food) की उपयोगिता समाज में दिन पर दिन बढ़ती जा रही है, इस विधि की सफलता की बहुत सम्भावनायें है। इस विधि द्वारा विकसित पदार्थों का उपयोग बेकरीज एवं रेस्टोरेन्ट्स में किया जाता है। इसके द्वारा जैविक संवर्धित पदार्थों (Microbial Cultures) को पेलेट्स के रूप में बदला जा सकता है, जिससे प्रोटीन एवं विटामिन युक्त सूक्ष्म कवकों को खाद्य पदार्थों के रूप में प्रयोग किया जा सकेगा।

2. हानि रहित शर्करा

चीनी या शर्करा की उपयोगिता किसे नहीं मालूम ? जहाँ एक ओर यह स्वाद को रुचिकर बनाती है वहीं खाद्य पदार्थों में कैलोरीज को बढ़ाकर पोषण का प्रमुख आधार भी है। अमेरिका के जार्जिया नामक प्रान्त में पाये जाने

प्रवक्ता, वनस्पति विज्ञान विभाग, विज्ञान संकाय, म० स० विश्वविद्यालय, बड़ौदा-390002 (गुजरात)

वाले स्टीविया (Stevia) नामक पौधे से, जो कि उष्ण कटिबन्धों में प्रचुरता से उपलब्ध है, हानिरहित शर्करा का उत्पादन किया जा सकता है। इसे विभिन्न रूपों में प्रयोग में लाया जा सकता है। यह मधुमेहग्रस्त रोगियों के लिए वरदान सिद्ध होगा।

स्टेविया को चाय एवं मृदु पेय बनाने में प्रयुक्त किया जा सकता है। गन्ने के विपरीत यह मीठा तत्व पौधों कीपत्तियों में पाया जाता है और यह सैकरिन की भाँति चीनी से कई गुना अधिक मीठा है।

3. केनोला : बहु आयामी तेल फसल

1960 के दशक में कनाडा के कृषि वैज्ञानिकों ने रेप सीड (अर्जेन्टीनियन) में ग्लूकोसाइनोलेट और इरुसिक अम्ल की मात्रा घटाकर जैवयान्त्रिकी विधियों के द्वारा एक नई फसल की रचना की जिसे 'केनोला' के नाम से जाना जाता है।

काले सरसो के दानों की तरह पीले फूलों वाली यह सरसो कुल की फसल है, जिसकी अनेक अधिक प्रोटीनयुक्त, बीमारियों से मुक्त किस्में विकसित की गई हैं। कनाडा में इसकी दस करोड़ डॉलर से अधिक की उपज है और गेहूँ के बाद उत्पादन में इसका दूसरा नम्बर है।

केनोला बीजों से उच्च किस्म का खाद्य तेल निकाला जाता है। यह रुचिकर अच्छी सुगन्ध वाला, हल्के पीले रंग का तेल है। इसको खाना बनाने, तलने एवं विविध रूपों में प्रयुक्त किया जा सकता है। वस्तुओं के तलने में यह जल्दी काला नहीं पड़ता, और इसमें वस्तुओं की सुगन्ध नहीं समाहित होती, जिससे एक के बाद एक कई वस्तुओं को इसमें पकयाा जा सकता है।

कनाडा में प्रयुक्त खाद्य तेलों में 75 प्रतिशत तेल 'केनोला' से प्राप्त होता है। अमेरिका में इसका प्रयोग बढ़ रहा है। केनोला से जानवरों हेतु अच्छी खली प्राप्त होती है। इसे अन्य तेलों यथा सरसों व सोयाबीन के साथ मिलाकर प्रयोग में लाया जा सकता है। अमेरिका की 'प्रोक्टर एवं गेम्बल' कम्पनी द्वारा विकसित 'पुरीटान' (Puritan brand) नामक तेल में 100 प्रतिशत केनोला है जबकि पहले इसमें 80 प्रतिशत सोयाबीन और 20 प्रतिशत सूरजमुखी का तेल प्रयोग किया जाता था। जैवतकनीकी विधियों द्वारा विकसित इस नई तेल वाली फसल की अन्य देशों में भी प्रयोग की बहुत सम्भावनायें हैं, क्योंकि मनुष्यों में इसके प्रयोग करने पर यह उनमें सीरम एवं कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करता है, जो कि अनेक बीमारियों खासकर हृदय रोगों का जनक है।

4. कवक जो जूट की किस्म को सुधारेगा

अपने देश में जूट तकनीकी शोधशाला, कलकत्ता के वैज्ञानिकों ने एसपरजिलस (Aspergillus) नामक कवव की एक ऐसी किस्म का पता लगाया है, जिसकी मदद से अब हमें उच्च किस्म का जूट धागा प्राप्त होगा। सड़ने के समय यह कवक जूट के पौधों में उनके तनों की छाल को मुलायम करता है और साथ ही सेल्यूलोज धागों की गुणवत्ता में कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता।

जूट के विकसित तनों में फाइबर रीड्स में गोंद के समान पदार्थ और पेक्टिन पदार्थ पाये जाते हैं, जिन्हें एस्परजिलस नामक कवक में पाये जाने वाले एन्जाइम गला डालते हैं। इस कवक की एक अन्य विशेषता यह है कि

इसमें सेल्यूलेज एन्जाइम नहीं पाया जाता, जो सेल्यूलोज को गलाने में मदद करता है। इससे जूट का धागा कमजोर पड़ जाता है।

प्रयोगशाला से इस विधि को खेतों तक पहुँचाया जा रहा है। अनेक विधियों का मानिकीकरण किया गया है और तकनीक को नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन (NRDC) को सौंप दिया गया है।

इस तकनीक में कवक को पहले बड़े-बड़े पात्रों में (Galvanized culture trays) द्रव आधार पर उगाया जाता है, जिसमें आलू का मण्ड और ग्लूकोज को मिलाया जाता है। 2-3 दिन वृद्धि के पश्चात् कवक को छान लिया जाता है। फिर इसमें क्योलिन पाउडर 1:3 के अनुपात में मिलाकर सुखा लिया जाता है। कुछ नाइट्रोजन और फॉसफेट आदि पोषक तत्वों को मिला देते हैं, जो कि वृद्धि के समय 'स्टारटर' का काम करते हैं। इसे पॉलीथीन के थैलों में भरकर विभिन्न स्थानों को भेजा जा सकता है और कमरे के ताप पर काफी दिनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है। ● ●

पुस्तक समीक्षा

○अनिल कुमार शुक्ल○

पुस्तक का नाम—जनसंख्या प्रदूषण और पर्यावरण

लेखक—डॉ० हरिश्चन्द्र व्यास

पृष्ठ संख्या—184+412

मूल्य—75.00 रुपये (सजिल्द)

प्रकाशन वर्ष—1989

प्रकाशक—विद्याविहार, 1685, कूचादखनीराय, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

इस समीक्ष्य पुस्तक में पर्यावरण से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों पर कुल 26 लेख और अन्त में 'हमारा सबका भविष्य' शीर्षक एक परिशिष्ट संग्रहीत हैं। पुस्तक का परिशिष्ट विश्व पर्यावरण आयोग के 'आवर कॉमन फ्यूचर शीर्षक रिपोर्ट के विहंगावलोकन के रूप में प्रस्तुत है। परिशिष्ट के रूप में रिपोर्ट के महत्वपूर्ण अंशों को हिन्दी के पाठकों के लिए उपलब्ध कराने के लिए लेखक को साधुवाद।

परन्तु, पूरी पुस्तक को पढ़ जाने के उपरान्त ऐसा लगता है कि अलग-अलग अवसरों पर लिखे गये लेखों को जबरदस्ती इकट्ठा करके एक पुस्तक का रूप दे दिया गया है। निश्चय ही किसी पुस्तक की रचना एक दिन में सम्भव नहीं, पर मौलिक पुस्तक के रचना विधान एवं लेखों का संग्रह कर प्रकाशित पुस्तक के योजना-विधान में निहित अन्तर को ध्यान में रखा जाना चाहिए। जब किसी मौलिक पुस्तक की रचना होती है तो पुस्तक के सम्भावित पाठक समूह को ध्यान में रखकर विषय-वस्तु की सीमाएं निर्धारित होती हैं और तदनुरूप ही विषय को अनेक अध्यायों में बाँटकर प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि प्रत्येक अध्याय स्वयं में स्वतन्त्र और विशिष्ट होता है, तथापि पूर्ववर्ती और परवर्ती

मोहिनी सदन, 9/86 मिश्रा कॉलोनी, गंगाघाट, उन्नाव, उत्तर प्रदेश

अध्यायों से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। परन्तु जब लेखों का संग्रह पुस्तकाकार प्रकाशित करना हो तो इसका योजना-विधान (ध्यान दें 'रचना-विधान' नहीं) बिल्कुल उल्टा होता है। सर्वप्रथम लेखों का चयन करते हैं, फिर किसी निश्चित 'योजना' के अनुसार पुस्तक हेतु उनका क्रम नियत करते हैं। लेखों का क्रम-निर्धारण करते समय लेखक या सम्पादक द्वारा उस उद्देश्य को ध्यान में रखा जाता है, जिससे प्रेरित होकर संग्रह की आवश्यकता महसूस की गई। उदाहरण के लिए संग्रह का उद्देश्य रचनाओं को उनके प्रकाशन क्रम में प्रस्तुत करना अथवा रचनाकार की भाषा-शैली में उत्तरोत्तर विकास को दर्शाना अथवा लेखक की भाषा-शैली आदि में पाई जाने वाली विविधताओं का दिग्दर्शन कराना हो सकता है। इसी प्रकार किसी संग्रह का एक उद्देश्य यह भी हो सकता है कि लेखक द्वारा एक ही विषय के विविध पहलुओं पर व्यक्त विचारों को एक जगह संकलित कर प्रस्तुत किया जाय। समीक्ष्य पुस्तक सम्भवत: इसी उद्देश्य से प्रकाशित है।

परन्तु इस उद्देश्य से प्रकाशित पुस्तकों में, मेरे विचार से, एक पहलू पर एक से अधिक लेख नहीं होने चाहिए। उदाहरण के लिए समीक्ष्य पुस्तक में 'प्राकृतिक पर्यावरण और नैतिकता' तथा 'पर्यावरण एवं नैतिकता' शीर्षक दो लेख न देकर केवल एक लेख शामिल करना चाहिए था। इसी प्रकार 'संस्कृति और पर्यावरण' तथा 'कला, सौन्दर्य और सांस्कृतिक पर्यावरण' को एक ही लेख में समाविष्ट कर प्रस्तुत करना विशेष प्रभावी होता। प्रसंगवश यहाँ यह उल्लेख कर दूँ कि उपरोक्त चार लेखों में से अन्तिम तीन इस पुस्तक के उत्कृष्ट लेखों में से हैं। इस पुस्तक के कुछ अन्य उत्कृष्ट लेख इस प्रकार है—'भारतीय जाति व्यवस्था और पर्यावरण', 'पर्यावरण एवं सर्वोदय दर्शन की प्रासंगिकता' तथा 'राजनीति और पर्यावरण'। यद्यपि 'राजनीति और पर्यावरण' शीर्षक लेख भाषा और प्रस्तुति के लिहाज से एक उत्कृष्ट लेख है, पर बेहतर होता यदि इस लेख का शीर्षक 'अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और पर्यावरण' होता।

इस पुस्तक का शीर्षक भी कुछ विचित्र सी अस्पष्टता लिए हुए है—'जनसंख्या प्रदूषण और पर्यावरण'। शीर्षक पढ़कर ऐसा लगता है कि ध्वनि प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण की तरह से यह भी एक नया प्रदूषण है। परन्तु मुझे तो ऐसा नहीं महसूस होता कि ध्वनि, जल या वायु की तरह 'जनसंख्या' भी प्रदूषित हो गई हो। हाँ, जनसंख्या वृद्धि से विभिन्न प्रकार के प्रदूषण अवश्य (गम्भीर) हो रहे हैं, पर 'जनसंख्या प्रदूषण' की बात समझ में नहीं आई। शायद, पुस्तक का शीर्षक 'जनसंख्या, प्रदूषण और पर्यावरण' होना चाहिए था।

विरामचिन्ह, विभक्ति, व्याकरण आदि की अनेक भूलें पुस्तक में हैं—ऐसी भूलों से लेखक/प्रकाशक की अनवधानता प्रकट होती है, लेकिन सर्वाधिक क्षति राष्ट्रभाषा की गरिमा को पहुँचती है। भविष्य में ऐसी त्रुटियों के प्रति हम सावधान रहें, इस उद्देश्य से कतिपय अशुद्ध वाक्य उद्धृत हैं—

…………ऐसा परिवर्तन जो कि उपरोक्त अंगों के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में परिवर्तित कर दें (पृ० 2)

··सरलता से विघटन होने वाले रसायनों का प्रयोग किया जाये। (पृ० 9)

·परिवार का भाग्यशाली व सुख-समृद्धि इस पर निर्भर करती है (पृ० 52)

·वर्तमान युग वैज्ञानिक एवं टेक्नोलॉजी का युग है। (पृ० 76)

समीक्ष्य पुस्तक में कुछ वाक्य ऐसे भी हैं, जिनका कोई अर्थ निकाला पाना असम्भव है। उदाहरणार्थ—

…………सभी राष्ट्र ऊर्जा की कमी की समस्याएँ उत्पन्न कर रहे हैं। (पृ० 57)

…………अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। (पृ० 60)

…………कालांतर में इस अनैतिकता के कृत्यों से मानव जीवन की समाप्ति का कारण बन सकता है। (पृ० 75)

निष्कर्ष रूप में, अधिकतम, यही कहा जा सकता है कि आकर्षक कवर, साफ-सुथरी छपाई और कुछ उत्कृष्ट लेखों के बावजूद पुस्तक सकारात्मक प्रभाव नहीं छोड़ पाई है। आशा है, भविष्य में भाषा-शैली और पुस्तक-योजना पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। ● ●

खाड़ी युद्ध के घहराते बादल

○ डॉ० शिवगोपाल मिश्र ○

खाड़ी युद्ध से हमारी अर्थ व्यवस्था पर चाहे जैसा भी प्रभाव पड़े किन्तु उसके कुछ सामयिक और दूरगामी प्रभाव पड़ेंगे जो पर्यावरण से सम्बन्ध रखते हैं। युद्ध के समय पर्यावरण के पक्षधर भी पर्यावरण को विनष्ट होते देख कर स्तब्ध रहे आते हैं, क्योंकि तब उनके लिए भी कुछ कर पाना सम्भव नहीं हो पाता। ऐसे अवसरों पर जो राष्ट्र युद्ध में सम्मिलित नहीं रहते किन्तु पड़ोसी होते हैं तो उन्हें पर्यावरणीय असन्तुलन के प्रति चौकन्ना होना स्वाभाविक है। यद्यपि भारत खाड़ी देशों का अतिनिकट पड़ोसी नहीं है तो भी खाड़ी युद्ध से उत्पन्न विभिषिका के प्रति उसका सतर्क रहना समीचीन है।

खाड़ी युद्ध से सम्प्रति कई प्रकार के खतरे हैं जिनमें तीन प्रमुख हैं। ये हैं—

(1) तेल के उफान से उत्पन्न समुद्री वातावरण में असन्तुलन।

(2) रासायनिक युद्ध होने की अवस्था में फैलने वाले रोगों की सम्भावना।

(3) नाभिकीय शस्त्रास्त्रों के प्रयोग से उत्पन्न खतरे।

इन तीनों में से तेल के फैलने वाली घटना सर्वप्रमुख है। विगत वर्षों में समुद्रों में तेल के रिसाव से उत्पन्न प्रदूषण की समस्या से सारे राष्ट्र परिचित हैं—विशेषतया वे देश जिनकी सीमा पर समुद्र हैं। खाड़ी देशों से दक्षिण पूर्व के देशों को बडे-बड़े टैंकरों द्वारा जो कच्चा तेल समुद्र में से होकर ले जाया जाता है वह सदैव रिसता रहा है और समुद्री जल तथा बालू के साथ टकराकर उसके गुल्ले (छोटी-छोटी गेंदें) बनकर दूर-दूर समुद्र तटों पर देखे जाते रहे हैं। समुद्र में जहाजों के दुर्घटनाग्रस्त होने पर तेल की विशाल राशि समुद्र में फैली रही है और यह भी सूचित किया जाता रहा है कि समुद्र में ऐसे जीवाणु पाये जाते हैं जो इस तेल को चाट जाते हैं, जिससे समुद्र में तेल की मात्रा बढ़ने नहीं पाती। फिर भी इस खाड़ी युद्ध में इतना तेल समुद्र में बहकर आया है (या जानबूझकर बहाया गया है) कि ये जीवाणु अक्षम प्रतीत होते हैं, सारे तेल को विघटित करने में। फलस्वरूप समुद्री जीव जन्तुओं, विशेषतया मछलियों तथा समुद्री पक्षियों और समुद्री घासों को प्रभावित होने से बचा पाना कठिन समस्या बन गई है।

समुद्र में तेल की मोटी परत को जलाकर भी नष्ट करने के प्रयास हुए हैं। बमबारी द्वारा उफनते तेल को जलाया गया है, किन्तु तेल के जलने से इतनी कालिख और धुआँ उत्पन्न हुआ कि यत्र तत्र "काली वर्षा" होने के

निदेशक, शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-2

समाचार मिले हैं। वस्तुतः इस तरह से वायु प्रदूषण में वृद्धि हुई है किन्तु जो काले बादल उठे हैं उनके भारत तक पहुँचने की सम्भावना कम है।

तेल के जलाने से या समुद्र में तेल के अधिक काल तक रहने से भिन्न प्रकार के परिणाम होंगे—

(अ) एक तो जल का ताप बढ़ेगा जिससे जलचरों तथा जलीय वनस्पतियों के विनष्ट होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

(ब) तेल की मोटी परत से जीवों को साँस लेने में तथा वनस्पतियों को अपना भोजन बनाने में कठिनाई होगी।

(स) तेल के विषैले उत्पादों का उन पर विषैला प्रभाव भी पड़ सकता है।

एक अन्य समस्या की ओर भी इंगित किया जाता है—

क्या मानसून पर इस तेल के जमाव का दुष्प्रभाव पड़ सकता है? इस दिशा में हमें कोई सकारात्मक उत्तर प्राप्त नहीं है। अरब सागर से उठने वाले मानसून पर क्या बीतेगी, इसका कोई पूर्व अनुमान नहीं है। वैसे सुदूर संवेदन विधि से तेल जमाव एवं उसके अग्रसर होने की गतिविधि का निरन्तर अवलोकन हो रहा है।

सुप्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक डॉ० स्वामीनाथन का कहना है कि खाड़ी युद्ध के कारण उर्वरकों तथा कीट-नाशियों की आपूर्ति न होने से भारत की कृषि व्यवस्था डगमगा सकती है। इससे अन्न उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। किन्तु सबसे बड़ी चिन्ता प्रकृति प्रेमियों तथा पर्यावरणविदों की है जिनके अनुसार—विदेशों से भारत में आये बहुत से पक्षियों का अब साइबेरिया की ओर लौट पाना कठिन हो जावेगा। ईसी तरह साउदी अरब तथा निकटवर्ती रेगिस्तानी क्षेत्रों में रहने वाले पशु-पक्षियों पर खाड़ी युद्ध का प्रभाव अवश्यंभावी है। जिस सैन्य पद्धति से कुवैत तथा ईराक के तेल कुओं में आग लगाई जा रही है और जिस तरह महीनों से वहाँ धुआँ उठता रहा है उससे अवश्य ही खाड़ी क्षेत्र के अतिरिक्त अन्यत्र भी वायु प्रदूषण बढ़ेगा।

खाड़ी युद्ध में तेल रिसाव के फलस्वरूप समुद्री तट पर समुद्री जल को शोधित करके पेय जल बनाने वाले जितने संयन्त्र लगे हैं उनमें अब तेलयुक्त जल ही उपलब्ध होने से पेय जल का संकट उपस्थित हो सकता है। पेय जल दूषित होने से तमाम बीमारियों के फैलने का खतरा बढ़ जाता है।

यद्यपि यह घोषणा की जाती रही है कि खाड़ी क्षेत्र में जैविकीय युद्ध या कि रसायन-युद्ध नहीं होगा किन्तु जहरीली गैसों तथा रोग के जीवाणुओं के मुक्त किये जाने की पूरी-पूरी सम्भावना है। ऐसी स्थिति में आस-पास के देशों में संकट आ सकता है।

भारत के वैज्ञानिकों को सतर्क होने की आवश्यकता है। स्वच्छ पर्यावरण की दिशा में जो अभियान चलाये जा रहे हों उसमें तेजी लाई जाय। यदि हम भोपाल काण्ड जैसी दुर्घटना हो जाने के बाद उपचार ढूँढने निकलेंगे तो बहुत देरी हो चुकी होगी। आवश्यकता इसी बात की है कि सारे पर्यावरणविद्, सारे वैज्ञानिक तथा सारे नागरिक एक ही जैसा सोचा करें—अपनी पर्यावरण-सुरक्षा प्रणाली को सुदृढ़ बनावें। हर विद्यार्थी, हर कर्मी, हर स्त्री तथा हर पुरुष को अपने दायित्व के प्रति जागरूक रहना होगा और पर्यावरण सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर जो भी कदम उठाये जा रहे हों उनसे परिचित होना चाहिये।

खाड़ी संकट आँख खोलने के लिए चेतावनी है। ऐसा संकट किसी भी राष्ट्र पर आ सकता है। पूर्व आयोजना एवं तथ्यों से परिचय—ये दो महत्वपूर्ण सतर्कताएँ हैं। ● ●

खाड़ी युद्ध और पर्यावरण

○प्रमोद कुमार शुक्ल○

पर्यावरण के सभी अवयवों वायु, जल, मृदा, वनस्पति व खनिज पदार्थों पर प्रत्येक प्राणी का चाहे वह थल का हो या जल का सभी का समान अधिकार है। किसी देश या स्थान विशेष की प्रकृतिप्रदत्त वस्तुओं का दुरुपयोग अति निन्दनीय है और यह संसार के सभी प्राणियों को समान रूप से प्रभावित करता है। ऐसा किसी विकसित देश का सोचना पूर्णतया गलत होगा कि हम अपनी आधुनिक तकनीकी व ज्ञान के माध्यम से खनिज पदार्थों के दुरुपयोग से होने वाले भयानक परिणामों को रोक लेंगे।

वर्तमान खाड़ी युद्ध शायद दो विचारों का परिणाम है। अमेरिका जहाँ विश्व में अपना प्रभाव बनाये रखना चाहता है वहीं ईराक भी खनिज पदार्थों के दोहन से उगाही गई पूँजी द्वारा विनाशकारी हथियारों का प्रयोग अपनी हठधर्मिकता के लिए कर रहा है। इतना ही नहीं, दोष चाहे जिसका हो, खनिज तेल खाड़ी में बहाकर युद्ध की विभीषिका को अत्यधिक जटिल बना दिया गया है। समुद्री प्राणी व समुद्र के समीप रहने वाले सभी जीव तेल के बहाव के सम्पर्क में आकर अपनी जीवनलीला समाप्त कर रहे हैं। इससे जीव हत्या के साथ ही साथ पर्यावरण में भी असंतुलन हो रहा है।

युद्ध में विध्वन्सकारी सामग्री के प्रयोग के कारण वातावरण का तापमान भी अत्यधिक प्रभावित हो रहा है। जैसा कि हमारी पर्यावरण मन्त्री **श्रीमती मेनका गाँधी** ने पत्रकारों को बताया है कि वातावरण का तापमान एक डिग्री सेल्सियस पिछले 16 जनवरी से चलने वाले खाड़ी युद्ध के कारण बढ़ गया है। मैं यहाँ स्पष्ट कहना चाहूँगा कि जो देश पर्यावरण के ओजोन पर्त के झीनी होने से प्रभावित होने की बात कर रहे हैं, वे क्या यह नहीं समझते कि बीड़ी, सिगरेट व घर के रसोई की गैस तथा शहरी कूड़ा-कचरे से ओजोन पर्त प्रभावित हो रही है या युद्ध में आग्नेय हथियारों के प्रयोग से ? मेरा अभिप्राय स्पष्ट है—अमेरिका या ब्रिटेन किसी को भी पर्यावरण की चिन्ता न है, न कभी थी।

अतः हम सभी को मिलकर युद्ध को समाप्त करने के लिए प्रयास करना चाहिए, तभी पर्यावरण स्वच्छ रखा जा सकता है और विनाश से बचा जा सकता है। ● ●

शोध छात्र, शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद-211002

खाड़ी युद्ध की विभीषिका और पर्यावरण

○दिनेश मणि○

खाड़ी युद्ध से विश्व के पर्यावरण को अपूरणीय क्षति का सामना करना पड़ेगा। सर्वाधिक क्षति तो युद्ध के दौरान हुए तेल रिसाव से हो रही है और वर्षों तक इसका दुष्प्रभाव बना रहेगा। विश्व प्रकृति कोष के जल प्रदूषण अधिकारी **निकोली किंग वोल्की** का कहना है कि फारस की खाड़ी में रिसा तेल दो सौ वर्षों तक पानी में बना रहेगा। उन्होंने कहा कि यद्यपि यह तेल दृश्य नहीं होगा लेकिन इससे सम्पूर्ण पारिस्थितिकीय व्यवस्था को क्षति पहुँच सकती है। सामान्य तौर पर खाड़ी में पानी के तेलरहित होने में दो सौ साल लग जायेंगे। सउदी अरब के तटवर्ती क्षेत्र इस तेल रिसाव से प्रभावित हो गये हैं और इससे बड़ी संख्या में समुद्री जीवों और पक्षियों की मृत्यु हुई है।

सोवियत रक्षा मन्त्रालय के जनरल **स्टनीस्लाव-पेत्रोव** के अनुसार ईराक के रासायनिक हथियारों के भण्डार में दो से चार हजार टन के बीच विषैले पदार्थ हैं। इन घातक रासायनिक पदार्थों में मस्टर्ड गैस, सरीन और हाइड्रोक्विनीक गैस शामिल हैं। हालाँकि ईराक के मौसम में इन विषैले पदार्थों का ज्यादा देर तक प्रभाव नहीं रहता लेकिन अगर रासायनिक हथियारों के डिपो और फैक्ट्रियों को नष्ट किया गया तो घातक तत्व एक सौ किलोमीटर दायरे में फैल जायेंगे। यूनिसेफ के क्षेत्रीय निदेशक श्री **रीड** के अनुसार वर्तमान खाड़ी युद्ध पाँच वर्ष से कम उम्र के कम से कम उन दस लाख बच्चों पर तो दुर्भाग्य बन कर टूट ही पड़ा है जो अब कभी इस युद्ध के मनो-वैज्ञानिक, आर्थिक और कुपोषणजन्य खतरनाक असर से मुक्त नहीं हो सकेंगे।

कुछ वर्ष पहले जब वैज्ञानिकों ने विश्व तापमान में वृद्धि होने और उसके फलस्वरूप समुद्र में बाढ़ आने की आशंका व्यक्त की थी, तो उस पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया, लेकिन अब यह आशंका सच साबित होती जान पड़ रही है। खाड़ी युद्ध के फलस्वरूप विश्व तापमान में आशातीत वृद्धि हो रही है। तंजानिया के उत्तर पूर्व में स्थित जंजीबी द्वीप समूह बढ़ते जल स्तर की चपेट में आने के करीब ही है। 28 हेक्टेयर वाला यह द्वीप धीरे-धीरे समुद्री जलधाराओं की चपेट में आ रहा है और आशंका है कि समुद्र के जलस्तर में होने वाली वृद्धि हजारों समुद्री जीवों को भी निगल जायेगी।

तंजानिया की राजधानी दार-ए-स्लाम को भी समुद्री बाढ़ से खतरा है। वैज्ञानिकों के अनुसार तापमान वृद्धि होने के प्रमाण मिल जाने के पश्चात् अब समुद्र के जल-स्तर में हो रही वृद्धि से यह बात तय है कि अन्य बहुत से द्वीपों का भी अस्तित्व खतरे में है और यदि जल्द ही पर्यावरण की ओर ध्यान न दिया गया और तापमान में वृद्धि होती रही तो मालद्वीव जैसे देशों का अस्तित्व ही मिट जायेगा। ● ●

शोध छात्र, शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-2

बिगड़ता पर्यावरण खाड़ी युद्ध के संदर्भ में

○विनय कुमार○

संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा पारित प्रस्ताव 'कुवैत से ईराक का अधिकार समाप्त करने के लिए सभी सम्भव उपाय किये जायें' के बाद से ही अमेरिका तथा ईराक में युद्ध अवश्यम्भावी लग रहा था। अन्तत: 16 जनवरी की रात वह विनाशकारी युद्ध प्रारम्भ हो गया।

युद्ध शुरू होने से पूर्व ही पर्यावरणीय वैज्ञानिक तथा बुद्धिजीवियों में पर्यावरण को हानि से बचाने के लिए विशेष चिन्ता व्याप्त हो गयी थी जो युद्ध शुरू होते ही वास्तविक रूप में प्रकट होने लगी। अमेरिका द्वारा ईराक पर प्रतिदिन सैकड़ों की संख्या में हवाई हमले से लाखों टन विस्फोटक सामग्री का प्रयोग हुआ है, जिसका कुप्रभाव अभी से निम्न रूप से दिखाई देने लगा है।

(1) वायुमण्डल में परिवर्तन
बी० बी० सी० रेडियो प्रसारण के अनुसार खाड़ी क्षेत्र में इस समय गर्मी का माहौल है।

(2) धुँये के बादल
लाखों लोग आँख तथा त्वचा रोगों से प्रभावित हो रहे हैं।

(3) महिलाओं में समय से पूर्व बच्चे का पैदा होना, गर्भ का गिरना आदि जैसी दुर्घटनायें प्रारम्भ हो गई हैं। ईराक रेडियो के अनुसार 100 बच्चों का जन्म समय से पूर्व हुआ है तथा अन्य 100 नवजात बच्चों की एक ही दिन में बगदाद अस्पताल में मृत्यु हो गई।

(4) बड़ी संख्या मे पेड़-पौधे नष्ट हो रहे हैं।

(5) पेय जल के स्रोत प्रदूषित हो रहे हैं।

उधर दूसरी ओर ईराक भी लगातार रासायनिक हथियारों के प्रयोग की धमकी दे रहा है, जिनका प्रयोग वह ईरान के साथ युद्ध में कर चुका है। उसने कुवैत स्थित तेल कुँओं में आग लगा दी तथा तेल कुँओं से लाखों बैरल तेल समुद्र में बहा दिया। परिणामस्वरूप 28 किमी० लम्बी तथा 20 किमी० चौड़ी कच्चे तेल की पर्त समुद्र पर बन गई है, जिसका दुष्प्रभाव सउदी अरब के पेय जल संयंत्र तथा विभिन्न समुद्री जीवों पर गम्भीर रूप से पड़ने की सम्भावना है। पर्यावरणीय वैज्ञानिक लेसर किरणों के प्रयोग से तेल के कुँओं की आग तो बुझा रहे हैं, परन्तु समुद्र की सतह पर स्थित तेल की पर्त का समाधान नहीं खोजा जा सका है। ऐसी सम्भावना व्यक्त की गई है कि यह तेल की पर्त का अवशोषित प्रभाव 200 वर्षों तक रहेगा।

भारत की ईराक से भौगोलिक दूरी की निकटता के परिणाम स्वरूप, हमारे यहाँ के वायुमण्डल पर भी प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगे हैं। पर्यावरण मन्त्री **श्रीमती मेनका गाँधी** के अनुसार भारत के तापमान में 1 डिग्री सेन्टीग्रेड की बढ़ोत्तरी हो गयी है। यहाँ तक कि आस्ट्रेलिया में भी 31 जनवरी को 45 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान तथा 1 फरवरी को 25 सेन्टीग्रेड तापमान का होना खाड़ी युद्ध का ही परिणाम माना जा रहा है।

एक अन्य पक्ष। अप्रत्यक्ष रूप से पेट्रोल की कमी के कारण कोयला तथा लकड़ी के प्रयोग बढ़ रहे हैं। फलस्वरूप बनों की कटाई तथा मृदा-क्षरण के पर्यावरण पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। अत: इस युद्ध से एक बार फिर मानवता पर एक बड़ा खतरा उत्पन्न हो गया है। ● ●

शोध छात्र, शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-2

परमाणु बिजलीघर : आनुवंशिक प्रभाव

○दिलीप भाटिया○

गर्मी व प्रकाश भी विकिरण ही कहलाते हैं। पर, यहाँ हम परमाणु विकिरण से होने वाले आनुवंशिक प्रभाव का अवलोकन कर रहे हैं। रेडियो सक्रिय पदार्थों से परमाणु विकिरण की उत्पत्ति होती है।

प्रत्येक पदार्थ का निर्माण परमाणुओं से होता है। कुछ परमाणु इतने अस्थिर होते हैं कि वे छोटे पदार्थों में विभाजित होते रहते हैं। ये रेडियो सक्रिय पदार्थ कहलाते हैं। परमाणु विकिरण विसर्जित करके ये पदार्थ स्थिरता प्राप्त करते हैं। इस परमाणु विकिरण को रेडियो धर्मिता कहा जाता है।

परमाणु विकिरण के प्रवाह के साथ ही पदार्थ परिवर्तित हो जाता है। पदार्थ की रेडियोधर्मिता को आधा होने में जो समय व्यतीत होता है, उसे उस रेडियोसक्रिय पदार्थ की अर्ध-जीवन-अवधि कहा जाता है। अर्ध जीवन अवधि सेकेण्ड से लेकर लाखों-करोड़ों वर्षों तक ही हो सकती है। विकिरण-मापन के लिए फोटो फिल्में प्रयोग में लायी जाती हैं।

यूरेनियम, थोरियम, रेडियम व पोटेशियम प्रकृति में हर स्थान पर उपलब्ध हैं। कॉस्मिक विकिरण किरणें वायुमण्डल व पृथ्वी पर सदा से ही विद्यमान रही हैं। प्रकृति-वायुमण्डल से हमें निरन्तर विकिरण प्राप्त हो रहा है। परमाणु बिजलीघर से इस मात्रा में आंशिक वृद्धि होती है, जो मात्र 1 या 2 प्रतिशत भर ही होती है। समुद्रतटीय स्थलों पर विकिरण-मापन द्वारा यह परिणाम सामने आया है कि वहाँ पर प्राकृतिक विकिरण मैदानी स्थलों के अनुपात में कहीं अधिक है। चिकित्सालय में करवाया गया एक्स-रे, कंक्रीट या ईंट का मकान, कई रोगों के इलाज में लायी जाने वाली विकिरण-पद्धति, हवाई यात्रा—इन सबसे हमें विकिरण मिलता है। मापे गये तथ्यों के आधार पर छाती के एक एक्स-रे से इतना विकिरण प्राप्त होता है, जितना किसी भी परमाणु बिजलीघर के समीप 10 वर्ष रहने से होता है।

विकिरण से हमारे शरीर तन्तु प्रभावित होते हैं। हमारे शरीर के सेल व मोलीक्यूल्स पर इनका विपरीत असर होता है। विकिरण-मात्रा व प्रभाव में सीधा सम्बन्ध है। अन्तर्राष्ट्रीय विकिरण संस्थान हमारे शरीर के लिए सुरक्षित मात्रा निर्धारित करता है, जिसका पालन हम सभी के लिए परम आवश्यक है। दुष्प्रभाव व आनुवंशिक प्रभाव को रोकने के लिए निर्धारित मापदण्ड सीमाएँ निर्धारित की गयी हैं।

अधिक मात्रा में विकिरण मात्रा लेने पर इसके तत्कालीन व दूरगामी दुष्प्रभाव होते हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण है- कैंसर लेकिन, कैंसर का एक ही कारण नहीं है। जहाँ पर परमाणु बिजलीघर नहीं हैं, कैंसर के मरीज वहाँ पर भी हैं ही। टॉक्सिक रसायन, पानी, हवा, खाद्य-पदार्थ कैंसर फैला सकते हैं। विकिरण की कम मात्रा भी कैंसर का एक कारण बन सकती है। विकिरण की अधिक मात्रा मूर्छा, उल्टी इत्यादि ला सकती है, पर जीवन को कोई खतरा नहीं है। प्राकृतिक विद्यमान विकिरण की अगर 1000 गुना विकिरण मात्रा ले ली गए तो जीवित बचने की सम्भावना कम रह जाएगी। पर ऐसी स्थिति साधारणतया आने नहीं दी जाती है।

टाइप 4/6, अणुकिरण कॉलोनी, भाभानगर, कोटा, राजस्थान-323307

परमाणु बिजलीघर : आनुवंशिक प्रभाव

○दिलीप भाटिया○

गर्मी व प्रकाश भी विकिरण ही कहलाते हैं। पर, यहाँ हम परमाणु विकिरण से होने वाले आनुवंशिक प्रभाव का अवलोकन कर रहे हैं। रेडियो सक्रिय पदार्थों से परमाणु विकिरण की उत्पत्ति होती है।

प्रत्येक पदार्थ का निर्माण परमाणुओं से होता है। कुछ परमाणु इतने अस्थिर होते हैं कि वे छोटे पदार्थों में विभाजित होते रहते हैं। ये रेडियो सक्रिय पदार्थ कहलाते हैं। परमाणु विकिरण विसर्जित करके ये पदार्थ स्थिरता प्राप्त करते हैं। इस परमाणु विकिरण को रेडियो धर्मिता कहा जाता है।

परमाणु विकिरण के प्रवाह के साथ ही पदार्थ परिवर्तित हो जाता है। पदार्थ की रेडियोधर्मिता को आधा होने में जो समय व्यतीत होता है, उसे उस रेडियोसक्रिय पदार्थ की अर्ध-नीयन-अवधि कहा जाता है। अर्ध नीयन अवधि सेकेण्ड से लेकर लाखों-करोड़ों वर्षों तक ही हो सकती है। विकिरण-मापन के लिए फोटो फिल्में प्रयोग में लायी जाती हैं।

यूरेनियम, थोरियम, रेडियम व पोटेशियम प्रकृति में हर स्थान पर उपलब्ध हैं। कॉस्मिक विकिरण किरणें वायुमण्डल व पृथ्वी पर सदा से ही विद्यमान रही हैं। प्रकृति-वायुमण्डल से हमें निरन्तर विकिरण प्राप्त हो रहा है। परमाणु बिजलीघर से इस मात्रा में आंशिक वृद्धि होती है, जो मात्र 1 या 2 प्रतिशत भर ही होती है। समद्रतटीय स्थलों पर विकिरण-मापन द्वारा यह परिणाम सामने आया है कि वहाँ पर प्राकृतिक विकिरण मैदानी स्थलों के अनुपात में कहीं अधिक है। चिकित्सालय में करवाया गया एक्स-रे, कंक्रीट या ईंट का मकान, कई रोगों के इलाज में लायी जाने वाली विकिरण-पद्धति, हवाई यात्रा—इन सबसे हमें विकिरण मिलता है। मापे गये तथ्यों के आधार पर छाती के एक एक्स-रे से इतना विकिरण प्राप्त होता है, जितना किसी भी परमाणु बिजलीघर के समीप 10 वर्ष रहने से होता है।

विकिरण से हमारे शरीर तन्तु प्रभावित होते हैं। हमारे शरीर के सेल व मोलीक्यूल्स पर इनका विपरीत असर होता है। विकिरण-मात्रा व प्रभाव में सीधा सम्बन्ध है। अन्तर्राष्ट्रीय विकिरण संस्थान हमारे शरीर के लिए सुरक्षित मात्रा निर्धारित करता है, जिसका पालन हम सभी के लिए परम आवश्यक है। दुष्प्रभाव व आनुवंशिक प्रभाव को रोकने के लिए निर्धारित मापदण्ड सीमाएँ निर्धारित की गयी हैं।

अधिक मात्रा में विकिरण मात्रा लेने पर इसके तत्कालीन व दूरगामी दुष्प्रभाव होते हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण है- कैंसर लेकिन, कैंसर का एक ही कारण नहीं है। जहाँ पर परमाणु बिजलीघर नहीं हैं, कैंसर के मरीज वहाँ पर भी हैं ही। टॉक्सिक रसायन, पानी, हवा, खाद्य-पदार्थ कैंसर फैला सकते हैं। विकिरण की कम मात्रा भी कैंसर का एक कारण बन सकती है। विकिरण की अधिक मात्रा मूर्छा, उल्टी इत्यादि ला सकती है, पर जीवन को कोई खतरा नहीं है। प्राकृतिक विद्यमान विकिरण की अगर 1000 गुना विकिरण मात्रा ले ली गए तो जीवित बचने की सम्भावना कम रह जाएगी। पर ऐसी स्थिति साधारणतया आने नहीं दी जाती है।

टाइप 4/6, अणुकिरण कॉलोनी, भाभानगर, कोटा, राजस्थान-323307

प्रारम्भिक जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात्, आइए, अब हम परमाणु बिजली घरों से निकलने वाले विकिरण के आनुवंशिक प्रभाव पर एक नजर डालें। विकिरण से सेल के मॉलीक्यूल की बनावट परिवर्तित हो जाती है। ये मॉलीक्यूल गलत बनावट भी अपना लेते हैं। अक्सर, यह नहीं होता है। कुछ विशेष परिस्थितियों व देश-काल में ऐसा होना सम्भव है। इसके कारण गर्भवती महिलाओं पर व नवजात शिशुओं पर दुष्प्रभाव होता है। गर्भवती महिलाओं के अन्दर पल रहे शिशु विकिरण से बहुत अधिक संवेदनशील होते हैं। इसी कारण चिकित्सक शिशुओं व गर्भवती महिलाओं को साधारणतया एक्स-रे के लिए सलाह नहीं देते हैं, आपातकालीन स्थिति की बात अलग है।

प्रजनन अंगों में मालीक्यूलर परिवर्तन से क्रोमोसोम पर असर होता है व आनुवंशिक प्रभाव होता है। इससे प्रजनन शक्ति पर दुष्प्रभाव होना स्वाभाविक है, लेकिन, विकिरण द्वारा आनुवंशिक प्रभाव हमेशा होगा ही, ऐसा निश्चित नहीं है। इसकी सम्भावना अवश्य है, पर नगण्य ही है। अत्यधिक विकिरण मात्रा प्राप्त होने पर इसकी सम्भावना प्रत्येक 100 में से मात्र 1 की है। विकिरण की कम व प्राकृतिक मात्रा पर आनुवंशिक दुष्प्रभाव की सम्भावना प्रति 1000 में से 1 की ही है। परमाणु युग से पूर्व भी पैदा होने वाले विकृत बालक हुए हैं। पुराणों (माइथोलोजी) में भी इनका वर्णन है। कैंसर की तरह, कई रासायनिक पदार्थ भी आनुवंशिक दुष्प्रभाव डालते हैं। पूर्णतया यह सिद्ध करना कठिन है कि आनुवंशिक दुष्प्रभाव का मुख्य कारण क्या है? कई स्थापित व प्रचलित सम्भावनाओं में से परमाणु विकिरण भी एक कारण है, पर मात्र यही एक कारण नहीं है।

रूस की चरनोबिल संयंत्र की दुर्घटना से आनुवंशिक दुष्प्रभाव की सम्भावना प्रति 1000 व्यक्तियों से 1 की है। कैंसर होने की भी यही सम्भावना है।

यह मान लेना चाहिए कि परमाणु बिजलीघर नहीं होते तो भी वर्तमान विकिरण-मात्रा का 99 प्रतिशत हमें मिलता ही, हम इससे बच नहीं सकते थे। दुष्प्रभावों व आनुवंशिक जनन प्रभावों के कारण हम अधिक नासमझ हुए हैं। सुरक्षित, निर्धारित मात्रा में विकिरण-मात्रा कोई तत्कालीन या दूरगामी या अगली पीढ़ी पर कोई खतरा पैदा नहीं करेगी। आवश्यकता, नियम-पालन व सतर्कता भर की ही है। ● ●

भूल सुधार

अप्रैल 1991 अंक में लेख "दौड़ना हमारा काम नहीं" में दो स्थानों पर भूल हो गई है, जिसका अत्यन्त खेद है। भूल सुधार इस प्रकार है :

पेज संख्या 4 पर आठवीं पंक्ति "स्प्रिंट मुकाबले ज्यादातर एरोबिक अर्थात् वातुजीवी होते हैं" के स्थान पर "स्प्रिंट मुकाबले ज्यादातर एनएरोबिक अर्थात् अवायुजीवी होते हैं" होना चाहिए। दरअसल यह उलटा हो गया है।

इसी प्रकार पृष्ठ 4 पर ही उसी कालम में नीचे 31 वीं पंक्ति से 34 वीं पंक्ति जो "असल में पहले मांस-पेशियों में टाइप-2 किस्म का वायुजीवी उत्तक होता है। परन्तु नियमित रूप से मैराथन दौड़ से टाइप-2 उत्तक अवायुजीवी टाइप-1 उत्तक में परिवर्तित हो जाता है।" के स्थान पर "असल में पहले मांसपेशियों में टाइप-2 किस्म का उत्तक होता है, परन्तु नियमित रूप से मैराथन दौड़ से कुछ टाइप-2 उत्तक, टाइप-1 उत्तक में परिवर्तित हो जाता है" होना चाहिए।

विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा आयोजित अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता 1991

व्हिटेकर पुरस्कार

दो सर्वश्रेष्ठ लेखों को पाँच-साँच सौ रुपयों के दो पुरस्कार

शर्तें

(1) लेख विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
(2) केवल प्रकाशित लेखों पर ही विचार किया जायेगा।
(3) लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।
(4) प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
(5) इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख जनवरी 1991 से दिसम्बर 1991 माह के बीच प्रकाशित हो।
(6) लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख मौलिक है।
(7) विज्ञान परिषद् के सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।
(8) वर्ष 1991 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 15 मार्च 1992 है।

लेख निम्न पते पर भेजें—

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

संपादक 'विज्ञान', विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है, यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र यदि किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जावेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिंतनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन की दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 200.00 रु०, आधा पृष्ठ 100.00 रु०; चौथाई पृष्ठ 50.00; आवरण द्वितीय; तृतीय तथा चतुर्थ 500.00 रु०।

मूल्य

आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत; 500 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 60 रु०
वार्षिक : 25 रु०
प्रति अंक : 2 रु० 50 पैसे

प्रेषक : विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002